शुभस्मरण

श्रीपूज्यपाद नाना,

स्वर्गीय पंडित रामलाल शुक्ल,

शिवगंज ज़िला उन्नाव निवासी

के

जिन्होंने अपने बाहुबलसे कुमिल्ला, बङ्गालमें ज़मींदारी प्राप्त करके उसका सदुपयोग किया.

जिनको विद्याके प्रचारमें बड़ा प्रेम था.

और

जिन्होने भेदभावको परित्याग कर इस लेखकको बाल्यावस्थामें शिक्षा प्रदान की,

उनके उस असीम अनुग्रहकेलिये, जिसको यह लेखक जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकता है, शिक्षासम्बन्धी यह पुस्तक

शुभस्मरणमें

सादर अर्पण की जाती है।

चन्द्रशेखर वाजपेयी।

विषयसूची

विषय

विषय ... पृष्ठ

सम्पादकीय वक्तव्य

पण्डित चन्द्रशेखर वाजपेयीकी पुस्तक पाठकोंकी सेवामें जाती है। इसमें लेखकने यूरोपके कई महान सज्जनोंका जीवनचरित और शिक्षा सम्बन्धी उनके विचारका निर्देश किया है। शिक्षा ऐसा विषय है कि जिसकी गौरव और आवश्यकतापर विचार करते हुए कितने ही लोग इसके रूपको स्थिर करनेमें और इसकी समस्याओंको हल करनेमें व्यग्र हैं। हर एक पुश्त अपने समय की कठिनाइयोंको देखता हुआ यत्न करता है कि दूसरी पुश्तको हमारे ऐसी कठिनाइयां न सहनी पड़े। ऐसी ही बड़ी आशाओंसे पाश्चात्य और पूर्वीय देशोंमें विचारवान् पुरुष जीवनके सब अंगोंमें परिवर्तन करनेका प्रस्ताव पुश्त दर पुश्त करते जाते हैं। इस प्रकारके बुद्धिक संघर्षणमें शिक्षा ऐसे विषयपर भी विचार होता आया है और प्रचलित त्रुटियोंको दूर करनेका प्रस्ताव किया गया है।

हमारे देशमें सामयिक क्रूरताके कारण पुरानी प्रचलित प्रणालियोंका इतना अधिक आदर जीवनके हर अंगमें हो गया है कि हर प्रकारके परिवर्तनसे हम घबड़ाते हैं और मन कन कारण अपने जीवनको समाप्त करना चाहते हैं। परन्तु अन्य देशोंमें हर ओर यह विचार फैला हुआ है कि प्रति दिन मनुष्य जाति उन्नति करती जाती है और इस उन्नतिमें सबको समझदारीके साथ भाग लेना चाहिए। वहाँ परिवर्तनसे लोग इतने परेशान नहीं होते जैसे यहाँ पर। और नये नये प्रस्ताव बड़े साहसके साथ लोग बराबर उपस्थित करते रहते हैं। इस पुस्तकमें हमारे लेखकने कितने ही शिक्षा-सुधारकोंका उदाहरण दिया है जिन्होंने बड़े साहससे और कभी कभी कष्ट उठाकर भी शिक्षा सम्बन्धी नये प्रस्ताव उपस्थित किये हैं। हमारे शिक्षकोंको अब यह देखना है कि अपने देशके योग्य कौन कौन सी बातें हैं जिन्हें हम ग्रहण कर सकते हैं।

ऐसी पुस्तकोंमें एक दोष होता है जिससे यह पुस्तक भी रहित नहीं है। अर्थात् यह समझना कि शिक्षा सम्बन्धी सब विचार छोटे बालकोंसे ही सम्बद्ध हैं। यूरोपके देशोंमें और अपने देशमें भी शिक्षण सुधारक केवल छोटे बच्चोंका ही खयाल करते हैं और विद्यार्थी शब्दसे हमलोगोंके चित्तपर भोले भाले एक छोटेसे बच्चेका ही आकार अंकित होता है। स्वामी श्रद्धानन्दजी-ने अपने "गुरुकुल"में और श्रीमान् रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने "शान्ति निकेतन" में छोटे बच्चोंकी शिक्षाकी ही फिक्र किया है और यह एक प्रकारसे ठीक भी है। शिक्षण-सुधारक यह समझता है कि आरम्भमें ही जब बच्चे ठीक हो जायँगे और हमारे विचारोंके अनुकूल शिक्षा पायेंगे तो आगे चलकर वे सुदृढ़ और सच्चे आदमी बन जायँगे। पर इसमें भ्रम यह होता है कि कोई भी शिक्षण-सुधारक संसार भरके बच्चोंको अपने दायरेमें नहीं ला सकता और यदि ला भी सका तो जितने छोटे बालक बालिकाएँ हैं उनसे दूनी संख्यामें वयःप्राप्त नर और नारी हैं जिनकी भी शिक्षाकी फिकर करनी चाहिए। इस कारण शिक्षण-सुधारकोंको उचित है कि अपने शिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव केवल छोटे छोटे बच्चे तक ही न रक्खें पर हर उमर और हर प्रकारके नर-नारियोंका भी विचार करें। हमारे लेखकने जितने शिक्षण सुधारकोंका उदाहरण दिया है उन सबने छोटे उमरके बालक बालिकाओंके ही शिक्षाकी फिकर की है। उनमें और अपने लेखक, सबसे हमको इस बातका झगड़ा है कि क्या वय प्राप्त नर-नारी इतने तिरस्कारके योग्य हैं कि उनके शिक्षाकी कुछ फिकर न की जाय। यदि हम समझते कि पाठ्य पुस्तक लेकर पाठशालाओंमें ही शिक्षा हो सकती है तो हम यह प्रश्न कदापि न उठाते। पर वास्तविक शिक्षाकेलिये पाठशालाकी कोठरी कदापि आवश्यक नहीं है। इस कारण हमारा यह कहना है कि शिक्षण सुधारकका प्रस्ताव हमारे लिये तभी समय उपयोगी हो सकता है जब वह सर्वव्यापी हो, जब वह सब उमरके, सब प्रकारके नर-नारियों, बालक-बालिकाओंका ख्याल करे।

इसे विचार भारतकी प्रचलित दशा देख कर विशेष प्रकारसे उठते हैं।

यहांकी दशा थोड़ेमें शब्दोंमें यह है कि जो आदमी अपने व्यवहारकी विद्या जानता है वह वैज्ञानिक साहित्यिक आदि विद्याओंसे अनभिज्ञ है जो पुस्तकोंके पठन-पाठन मननसे प्राप्त होती है। और जो इस प्रकारकी पुस्तकीय विद्या प्राप्त करते हैं वह व्यवहारकी शिक्षामें नितान्त अनभिज्ञ रहते हैं। जिसको हम शिक्षित कहते हैं उनमेंसे बहुतोंको रोजगार नहीं मिलता। जिनको रोजगार मिलता है उनमेंसे कितने ही अशिक्षित होते हैं और अपने रोजगारके अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक आदि प्रश्नोंको कुछ भी नहीं समझते हैं और न इनपर विचार करनेकी आवश्यकता ही समझते हैं। जबतक किसीको रोजगार नहीं मिलता तब तक उसको अवश्य ही उदरपालनकी फिकर रहती है और वह किसी अन्य बातमें दिलचस्पी नहीं ले सकता। इस कारण हमारे शिक्षित समाजके अधिकांश लोग रोजगारके तलाशमें और उसके न मिलनेके कारण पश्चात्ताप-में समय व्यतीत करते हैं और अधिकांश रोजगारी बड़े बड़े राष्ट्रीय और अन्त-र्राष्ट्रीय बातोंपर प्रकारकी शिक्षा न रहनेके कारण विचार ही नहीं करते। हमको अब ऐसे शिक्षण-सुधारकी आवश्यकता है जो शिक्षितको रोजगार दे और रोजगारीको शिक्षित करे। हमारेलिये यह पर्याप्त नहीं है कि शिक्षण सुधारक छोटी मोटी पाठशाला खोल कर कतिपय विद्यार्थियोंको विशेष प्रकारकी शिक्षा दें। आवश्यकता हमारेलिये इस बातकी है कि यथासम्भव अल्पकालमें यथा-साध्य अधिकसे अधिक शिक्षा प्राप्त करें। देशकालको समझते हुए प्रचलित शिक्षा प्रणालियोंकी त्रुटियोंपर ध्यान देते हुए हमको सहसा तीन करोड़ नरनारियोंको शिक्षित कर देना है। उनके हृदयोंमें आत्मगौरवका सञ्चार कर देना है। उनमेंसे हरएकको अपनी अपनी योग्यताके अनुकूल रोजगार दिलवाना है। और भारतीय होनेकी हैसियतसे अन्य देशवासियोंके समकक्ष बैठाना है। यह कैसे हो।

प्राचीन समयमें भारतमें आदर्शोंको छोड़कर वास्तविक शिक्षाकी प्रणाली क्या थी, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु जो संस्कृत पाठशालाएँ इस समय भी मौजूद हैं इनको अगर प्राचीन प्रणालीकी आभा भी मान लें तो यह

कहना होगा कि पहले विद्वान् ब्राह्मण पण्डितगण अपनी अलग अलग पाठशालाएँ रखते थे जहांपर विद्याके अभिलाषी विद्यार्थीगण आते थे और बड़े आदर पूर्वक गुरुका सम्मान करते हुए विद्याका उपार्जन करते थे। विद्यार्थियोंको कोई शुल्क नहीं देना होता था और कभी कभी तो गुरु ही उनके अन्न वस्त्रका प्रबन्ध करते थे। ऐसी संस्थाका व्यय कोई धनी विद्याप्रेमी गुरुविशेषकी आदर करनेवाले राजा या महाजन उठाया करते थे। इन पाठशालाओंमें प्राय: जन्मना ब्राह्मणके ही लड़के पढ़ते थे जो पढ़नेके बाद स्वयं गुरु हो जाते थे अथवा पुरोहित आदिका काम करते थे। अन्य जातियोंके बालक अपने परम्पराके रोजगारमें छोटी ही उमरसे लगाये जाते थे। महाजनोंके लड़कोंको छोटी उमरसे अपने कोठीमें बैठकर काम सीखना होता था। इसी प्रकार दूकानदारके लड़के दूकानदारी सीखते थे, श्रमजीवियोंके लड़के अपने अपने पिताका काम बड़ी छोटी अवस्थामें करने लगते थे। इन लोगोंको पढ़ने लिखनेकी शिक्षा नहीं दी जाती थी। केवल उतना ही लिखना पढ़ना पर्याप्त समझा जाता था जिससे वे अपने रोजगार सम्बन्धी हिसाब किताब चिट्ठी-पत्री लिख सकें। श्रमजीवीगण तो अक्षर आदि लिखने पढ़नेसे नितान्त अनभिज्ञ रहते थे। विद्या सम्बन्धी जो कुछ आवश्यकताएँ थीं वह शिक्षित ब्राह्मणगण पूरा करते थे। जन्म, विवाह, मृत्यु आदि संस्कारोंपर वे सहायता देते थे और कथादिसे लोगोंको धर्म्मादि विषयोंका ज्ञान देते थे और उनका चित्त प्रसन्न किया करते थे। इसमें दो दोष थे। एक तो विद्याका संग्रह केवल एक जाति विशेष करती थी जिसके कारण वह जो चाहे अन्य जातियोंमें कर सकती थी और स्वार्थवश ऐसे अन्य जातियोंमें ऐसे विचारके संचार करानेका यत्न करती थी कि जिससे अपना ऐहिक लाभ हो चाहे दूसरोंका कितना ही नुकसान हो जाय। दूसरे, अधिकांश लोग ज्ञानादि सञ्चयसे विमुख रहते थे और इस कारण उनका विचार सङ्कीर्ण होता था। अपने रोजगारको छोड़ कर और किसी बातकी फिक्र नहीं करते थे और ज्ञानवान ब्राह्मणोंके हुक्मी बन्दे बने रहते थे।

इस समय जो प्रणाली प्रचलित है उसमें आंग्लभाषाद्वारा शिक्षा दी जाती है। इस प्रणालीसे हमारे देशको दो बड़े लाभ हुए हैं। एक तो यह कि हमारे संकीर्ण और संकुचित हृदयों और मस्तिष्कोंमें एक नये सभ्यताका संस्कार हुआ और अपनी कूपमण्डूकताको हटानेकी इच्छा हुई। पाश्चात्य विद्यायें और विविध प्रकारके ज्ञान हमको मिले। दूसरे, यह कि सैकड़ों वर्षोंके जुदाईके बाद, परस्पर झगड़े और द्वेषोंके बाद हर प्रान्तके शिक्षित समाजकी एक ही भाषा हो जानेसे उनको यकायक यह बात मालूम हुई कि यदि हमारे देशमें राजनीतिक एकता न भी होती तो भी वास्तव में भारतका हृदय एक है और सब बातोंमें हमलोगोंके रहन सहन आचार-विचार परम फरक नहीं है। अब यह एकता केवल तीर्थस्थानोंके ही कारण नहीं मालूम होती पर छोटी बड़ी सब बातोंमें मालूम होती है। यहां तक कि महादेव गोविन्द रानडेने कहा है कि अच्छी बातोंमें ही नहीं, आश्चर्य तो यह है कि बुरी बातोंमें भी भारतके सब प्रदेश एक समान है। जैसे कि बाल विवाह, विधवा विवाहका न होना, स्त्रियोंका नीचा पद छोटी जातियों-पर अत्याचार, यह सब जगह है। यदि हमारी आंग्ल शिक्षा हमारेलिये और कुछ न किये होती और हमें केवल अपनी वास्तविक आन्तरिक एकता बतला देती तो भी जो उसको सीखनेमें आज करीब सौ वर्षसे हम कष्ट उठा रहे हैं वह सफल होता।

पर प्रशंसा करना पर्य्याप्त नहीं है। उसकी जो त्रुटियां हैं उसको समझना आवश्यक है। एक तो उसने हमारे शिक्षित और अशिक्षित लोगोंमें बड़ा अन्तर कर दिया है। शिक्षित लोगोंके आदर्श और विचार पाश्चात्य ढंगके बने होते हैं, इस कारण उन लोगोंको अपने घरपर और अपने समाजमें बड़ा कष्ट होता है और वे अपने भाईयोंसे और उनके भाई उनसे परेशान रहते हैं। दूसरे, इस शिक्षाका और जीविकाका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इस कारण बीस बाईस बरसकी उमर तक बड़ा परिश्रम करके पढ़नेपर भी हमको रोज-गार नहीं मिलता और बहुत कष्टके साथ जीवननिर्वाह करना पड़ता है

जिससे कि मरण पर्यन्त हृदयमें पश्चात्ताप और दूसरोंकी ओर रोष बना रहता है। तीसरी बात यह है कि अपने देश और कालके नियमोंके विपरीत पाठशालाओंका समय होनेके कारण, पाठशालाकी शिक्षा हमारे हैसियतसे बहुत अधिक महँगी होनेके कारण और उसको पानेकेलिये बड़ा भारी परिश्रम करनेके कारण हमारे नवयुवकोंका शरीर और मस्तिष्क सब खराब हुआ जा रहा है। छोटी उमरसे उन्हें फिकर घेरती है और जब उन्हें प्रौढ़ होना चाहिए तो वे वृद्ध हो जाते हैं।

ऐसी अवस्थामें हमको ऐसे शिक्षण-सुधारकी आवश्यकता है जो हमारे देश और कालके उपयुक्त ऐसे प्रस्ताव उपस्थित करे जिनसे कि इन सब दोषोंका निवारण हो। इस समय हमारे देशको शिक्षित करनेकेलिये पहिले तो जितने पाँच बरससे दस बरस तकके बालक बालिकायें हैं उन सबको अक्षर लिखना पढ़ना और अङ्कोंमें हिसाब लगा लेना सिखलाना चाहिए और इसके बाद अधिकांश जो श्रमजीवियोंके पुत्र होंगे उनको अपना पैतृक कार्य आरम्भ करा देना चाहिए। पर इनमेंसे भी ऐसे बालक जिनकी बुद्धि तीक्ष्ण हो उन्हें और अधिक विद्याकेलिये सुरक्षित रखना चाहिए। बाकी सब दो तीन बरस अपने व्यवसाय विशेषको सीख करके उचित काममें लग जायँ। इन सुरक्षित विद्यार्थियोंको और अन्य बालकोंको जो श्रमजीवी नहीं है, उन्हें दस बरससे सोलह वर्ष तक थोड़ा थोड़ा विविध विषयोंका ज्ञान देना चाहिए। यदि मातृभाषामें शिक्षा हो तो इतनी शिक्षामें बुद्धिका पर्याप्त विकास हो जायगा। इसके बाद जो जो रोजगार विशेष भिन्न भिन्न विद्यार्थी लेना चाहें उसकी शिक्षा तीन चार बरस तक प्राप्त करें ताकि वे अपना रोजगार अच्छी तरह सम्भाल सकें, प्रसन्न रह सकें और रोजगारमें उन्नति करते हुए अपनी पूर्व शिक्षाके कारण राष्ट्र और सामाजिक जटिल समस्याओंपर भी विचार और उनके हल करनेका यत्न कर सकें।

सोलह, सत्रह वर्षकी उमरके बाद उच्च शिक्षाका अधिकारी वही समझा जाय जो स्वतन्त्र होनेके कारण शिक्षाके ही अर्थ शिक्षा ग्रहण करना चाहे और

उसका पूरा व्यय बर्दाश्त कर सके अथवा ऐसे लोग जो वकालत, वैद्यक, शिक्षक आदिके रोजगार लेना चाहें जो उच्च शिक्षासे ही प्राप्त हो सकते है। सब लोगोंको एक ही प्रकारकी भेडिया-धसान शिक्षा देनेसे इस समय बडी हानि हो रही है। इन सब श्रेणियोंके शिक्षाका प्रबन्ध कर देनेसे ही शिक्षा सम्बन्धी हमारा कर्त्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। उचित है कि बहुतसे परिव्राजक गांव गांव, नगर नगर घूमकर लोगोंको एकत्रित करके व्याख्यानोंद्वारा संसारकी गति समझाते रहें और नयी नयी बातोंका ज्ञान प्रचार करते रहें। इस प्रकारसे जिन लोगोंने कुछ भी नहीं पढा या बहुत कम पढा, वे भी अपने छुटीके समय कानोंकद्वारा अविरल और उत्तम शिक्षा प्राप्त करते रहें। इस रीतिसे आबाल वृद्ध वनिता सब ही शिक्षित हो सकते है। इसमें समय बहुत कम लगेगा पर परिश्रमकी बडी आवश्यकता है। भारत क्या किसी ही देशमें इतने बडे कार्यकेलिये राष्ट्रकी सहायता अनिवार्य है।

हमें आवश्यकता इस बातकी है कि भारतके विशेष दशापर विचार रखता हुआ, आगे पीछे देखता हुआ, ऐसा कोई शिक्षा-सुधारक हो जो ऐसे प्रस्ताव पेश करे जिससे कि प्रचलित प्रणालियोंका दोष दूर हो और भारतवर्षकी दशा सर्वांगमें सुधरे क्योंकि उचित शिक्षापर सब ही अंग निर्भर है।

अतएव अपने लेखकसे मेरी प्रार्थना यह है कि इन सब बातोंका विचार रखते हुए एक दूसरी पुस्तक इस विषयपर हमें शीघ्र ही दें। मुझे पूर्ण आशा है कि अधिक संख्यामें हिन्दी पाठक इस पुस्तकको पढेंगे और लेखक, प्रकाशक और संपादक सबको उत्साहित करेंगे।

सेवाश्रम,
बनारस छाउनी।
२२ श्रावण १९७७

श्रीप्रकाश

प्रस्तावना

आधुनिक समयमे अन्य देशीय भाषाओंकी अपेक्षा यों तो हिन्दी भाषाका साहित्य बहुत कम स्वनामधन्य पुस्तकोंसे अलंकृत है, पर शिक्षासम्बन्धी साहित्यमें इनी गिनी पुस्तकोंको छोड़कर मैदान बिल्कुल साफ पड़ा है। हिन्दी साहित्यके इतिहास-में यह समय अनुवाद युग है। जब विद्वान और विचारक मौ-लिक पुस्तकोंका संकलन नहीं कर रहे हैं, तो अनुवादक ही घड़ाघड़ अपनी पुस्तकोंसे साहित्यको सुसज्जित कर रहे हैं। है भी यही यथार्थ बात। रात्रिके समय जब सूर्य अपना प्रकाश नहीं देता तब क्या मनुष्य अपना काम छोटे छोटे लम्पों और चिरागोंके प्रकाशसे नहीं चलाते हैं। हिन्दी साहित्यकी भावी उन्नतिमें विश्वास रखकर सम्प्रति हमको वर्तमान अनुवादकोंके परिश्रमसे ही सन्तुष्ट होना पड़ेगा। इसी अनुवाद प्रवाहमें पड़कर मैंने भी इस छोटीसी पुस्तकको लिख डाला है। मेरी यह धृष्टता क्षन्तव्य है।

इस छोटीसी पुस्तकमें यूरोपके सात प्रसिद्ध शिक्षण सुधा-रकोंके संक्षिप्त जीवनचरित और उनकी प्रतिपादित की हुई शिक्षण पद्धतियोंके मुख्य सिद्धान्त दिये गये हैं। इन सात शिक्षण सुधारकोंके अतिरिक्त यूरोपमें इनके समान अन्य प्रसिद्ध

शिक्षण-सुधारक भी हुए हैं पर उनको इस पुस्तकमें क्यों स्थान नहीं मिला, ऐसा प्रश्न किया जा सकता है। यह चुनाव मनमाना है। इसके समर्थनमें मैं केवल यह नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि मेरी तुच्छ सम्मतिमें मौलिक सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे ये ही सम्मानके पात्र हैं। अन्य सुधारकोंका प्रकाश इनके प्रकाशमें फीका पड़ जाता है। अंग्रेजीकी शिक्षासम्बन्धी पुस्तकोंमें मुख्यतया इन्हींका विवरण दिया जाता है।

इस पुस्तकका आधार अंग्रेजीकी दो पुस्तकें हैं—(१) ग्रेवकी लिखी हुई पुस्तक "तीन शतकके महान शिक्षक" * (२) क्वीककी बनाई हुई पुस्तक "शिक्षण सुधारकोंपर निबन्ध" † इस पुस्तकमें जिन विचारोंका समावेश है, वे इन्हीं दो पुस्तकोंसे उद्धृत किये गये हैं। कुछ टीका टिप्पणियोंको छोड़कर इनमेंसे किसी भी विचारको मैं अपना निजी विचार नहीं कह सकता हूं। इस पुस्तकमें कहीं कहींपर तो मैंने इन दोनों पुस्तकोंके वाक्योंके अनुवाद रखनेतकमें संकोच नहीं किया है क्योंकि उन वाक्योंके भाव बड़े ही हृदयग्राही और विशाल हैं। एक प्रकारसे यह पुस्तक इन्हीं दो पुस्तकोंका सारांश और छायानुवाद है और इन्हींके

---

* Grave: "Great Educators of Three Centuries" (ग्रेट एज्यूकेटर्स आफ थ्री सेंचुरीज़)

† Quick "Essays on Educational Reformers" (क्वीक: एसेज़ आन एज्यूकेशनल रिफार्मर्स)

आधारपर लिखी गयी है—इस कथनमें अत्युक्ति न होगी'। मुझको स्वयम् अनुभव है कि इस पुस्तकमें कहीं कहींपर विचारोंमें संदिग्धता आ गयी है। इसका कारण मेरी भाषाकी सदोषता है। इसमें शिक्षण-सुधारकोंका दोष नहीं है। इस पुस्तकका विषय महान होनेके कारण कहीं कहीं भाषामें क्लिष्टता आ गयी है। आशा है कि इसे पाठक कोई बड़ा दोष न समझेंगे।

उपर्युक्त दो पुस्तकोंके लेखकोंके अतिरिक्त मैंने हर्बर्ट स्पेन्सरके जीवनचरित और शिक्षासम्बन्धी विचारोंके लिखनेमें पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, "सरस्वती"के सम्पादककी अनुवादित पुस्तक "शिक्षा" से बड़ी सहायता ली है। यहांतक कि उनकी पुस्तकके सार-गर्भित कुछ वाक्योंको ग्रहण करनेमें भी मैंने सङ्कोच नहीं किया है। एतदर्थ मैं उनका बड़ा अनुगृहीत हूं। अंग्रेजी शब्दोंकेलिये उपयुक्त हिन्दी शब्दोंको मैंने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी वैज्ञानिक कोषसे लिया है।

काशी,
१८ आषाढ़ १९७७। चन्द्रशेखर वाजपेयी

भूमिका

एक विद्वानका कथन है कि "परिवर्तन प्रकृतिका सर्वव्यापक नियम है"। हमारा देश भी इसी अकाट्य नियमसे बद्ध है। आजकल हमारे देशमें इसी परिवर्तनयुगका राज्य है और समस्त देशमें नया प्रकाश अपनी छटा दिखला रहा है। जिस ओर दृष्टि डालो उसी ओर इस व्यापक नियमके चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। धार्मिक जगतने अपना सिर इस नियमके सामने झुका दिया है। सब धार्मिक सम्प्रदाय और मतमतान्तर, देश और कालको आवश्यकताओंको दृष्टिमें रखकर कार्य करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। समाजमें जिन बुरी प्रथाओं और कुरीतियोंने अपना सिक्का जमा लिया था, धीरे धीरे उनका संशोधन हो रहा है। कुछ दिनोंमें मनुष्योंके बीचमें जो अस्वाभाविक भेद खड़े कर दिये गये हैं वे धीरे धीरे छूट जायंगे और मनुष्योंकी समानताका नियम भी सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हो जायगा। राजनैतिक आन्दोलनके कारण भारतीयोंमें अपने स्वत्व प्राप्त करनेके लिये एक नई जागृति उत्पन्न हो गई है। यूरोपके इस विश्वव्यापी महायुद्धने भारतीयोंके हृदयपटलपर स्वराज्य-प्राप्तिकी प्रबल लालसा अङ्कित कर दी है। देशके शासनपद्धतिको सुधारनेकी महौषधि स्वराज्य है। सर्व साधारणमें स्वराज्यके भावोंको फैलानेकेलिये, कल्याणकारक धार्मिक गूढ़ तत्वोंके ग्रहण करनेकी योग्यता उत्पन्न करनेकेलिये, और सामाजिक कृत्रिम भेदोंको मिटाने और उनके स्थानमें ऐक्य पैदा करनेके

लिये हमको शिक्षाकी सहायता लेनी पड़ेगी। शिक्षाप्रसारके विना ये भाव साध्य नहीं हैं। सरकार और प्रजा दोनों शिक्षाके मर्मको समझ गये हैं। चाहे सरकार इस ओर कुछ उदासीनता प्रकाशित करती हो, पर प्रजाका सारा अस्तित्व इसीपर अवलम्बित है। देशमें स्कूल और कालिजोंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और छात्रोंकी भी संख्या सन्तोषप्रद है। भारतवर्षमें शिक्षाका प्रचार होते देखकर, चाहे वह प्रचार आवश्यकताके अनुसार न हो, किस देशभक्त मनुष्यका हृदय प्रफुल्लित न होता होगा। पर अब सोचना यह है कि क्या वर्तमान शिक्षाप्रणालीमें कुछ कायापलट करनेवाले परिवर्तनोंकी आवश्यकता नहीं है। यदि है तो किस प्रकारसे वर्तमान शिक्षाप्रणालीमें हेर फेर करना चाहिए। ऐसा करनेमें हमको स्मरण रखना चाहिए कि देशमें प्रचलित शिक्षाप्रणालीका आदिम स्रोत यूरोपसे बह रहा है। यद्यपि यूरोपमें भी सर्वत्र एक ही शिक्षाप्रणाली नहीं पाई जाती है, तोभी यूरोपके शिक्षाके इतिहाससे अनेक कठिनाइयां हल हो जायेंगी और यूरोपवालोंकी गलतियोंसे हम चेतावनी ले सकते हैं। यूरोपमें कुछ ऐसे महान शिक्षण सुधारक उत्पन्न हो गये हैं, जिनकी बदौलत वहांकी शिक्षाप्रणालीमें अनेक परिवर्तन हुये हैं और उनके जीवनचरित्रोंके अध्ययनसे किये जा रहे हैं। इसी अभिप्रायको सामने रखकर मैं कुछ ऐसे प्रसिद्ध शिक्षण सुधारकोंके जीवनकालकी मुख्य घटनाओं और उनके सिद्धान्तोंका दिग्दर्शनमात्र करना चाहता हूँ।

शिक्षाके उद्देश

यहाँपर यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि बालकको शिक्षा-की आवश्यकता है। सबको शिक्षाकी आवश्यकता कभी न कभी अनुभव होती है। पर शिक्षाकी परिभाषा क्या है और किस विधिसे हमको शिक्षा दी जा सकती है, इन बातोंमें बड़ा मत-भेद है। इसी मतभेदको प्रकाशित करनेके लिये यूरोपके शिक्षण सुधारकोंकी निर्धारित की हुई शिक्षण-पद्धतियोंका विवरण लिखा गया है। आजकल शिक्षा एक बहुत ही साधारण शब्द है। सब कोई समझते हैं कि वे शिक्षाके वास्तविक उद्देशसे परिचित हैं और शिक्षासम्बन्धी उनके विचारोंमें परिवर्तन होनेकी गुञ्जाइश नहीं है। वास्तवमें देखा जाय तो शिक्षा ऐसा सरल विषय नहीं है। यह बड़ा ही गहन विषय है। इसके सम्बन्धमें कोई अन्तिम निर्णयात्मक वाक्य नहीं कहे जा सकते। प्रधानतया शिक्षाके दो बड़े भाग किये जा सकते हैं—(१) साधारण शिक्षा, (२) विशिष्ट शिक्षा या प्राकारक शिक्षा।

(१) साधारण शिक्षा—जिस क्षणसे शिशुरूपमें एक मनुष्य इस संसारमें सूर्यका प्रकाश देखता है, उसी क्षणसे उस मनुष्य-की शिक्षा आरम्भ हो जाती है। क्षण क्षणमें उसको उठते बैठते, सोते जागते, बाह्य पदार्थोंका संवेदन और उनके सम्बन्धका अनुभव मिलने लगता है। ज्यों ज्यों वह उम्रमें बढ़ता जाता है, त्यों त्यों उसकी शिक्षाका दायरा भी विस्तीर्ण होता जाता है। अपने माता पिता, भाई और अड़ोस पड़ोसके मनुष्योंसे उसको पग पग पर शिक्षा मिलती जाती है, चाहे वह शिक्षा बुरी हो या

भली। उसकी आदतें इसी शिक्षाद्वारा बनती हैं। इन्ही आदतों-से उसके आचरणका संगठन होता है। इस साधारण शिक्षाका कोई निश्चित स्थान नहीं है। घर, घरके बाहर, सड़कों, बाज़ारों और बागों आदिमें यह शिक्षा बालकको दी जाती है। इस शिक्षाको देनेका कोई ख़ास तरीक़ा भी नहीं है और न ऐसी शिक्षाके ऊपर हमारा कोई अधिकार ही है। हाँ, ऐसा यदि किया जाय कि रूसोके अनुसार एक बालक समाजसे बिल्कुल पृथक रक्खा जाय या बालक गुरुकुल आदिमें रहे, तो अलबत्ते हम अपनी इच्छानुकूल उस बालकको शिक्षा दे सकेंगे, अन्यथा बाह्यजगतका बड़ा प्रभाव उसकी शिक्षाके ऊपर पड़ेगा। किन्हीं अंशोंमें यह साधारण शिक्षा माता पिताओंके वशमें आ सकती है। पर साधारणतया यह शिक्षा अनिर्वचनीय मालूम होती है। अनेक मनुष्य ऐसे भी देखे गये हैं जो इसी शिक्षाकी बदौलत विद्वानके पद तक पहुँच गये हैं। उनकी विचारशैली बड़े ऊँचे दर्जेकी हो गई है। उनके आचार व्यवहार भी बड़े शिष्ट हो गये हैं। उनको प्रत्यक्ष अनुभवसे ज्ञान प्राप्त हुआ था। पर ऐसे मनुष्योंकी संख्या बहुत अधिक है जो इस साधारण शिक्षासे कोई विशेष लाभ नहीं उठा सकते हैं और न उनकी शक्तियोंमें समुचित विकास ही होता है।

(२) विशिष्ट या प्राकारक शिक्षा वह है जो आधुनिक समयमें हमारे स्कूलों, संस्कृत पाठ्शालाओं आदिमें नियमित रूपमें दी जाती है। इस प्रकारकी शिक्षा निश्चित स्थानोंमें और निश्चित विधिसे बालकोंको दी जाती है। एक प्रकारसे यह शिक्षा शिक्षकोंके हाथोंमें है पर उनके प्रभाव भी परिमित हैं। वे निश्चित समयके लिये इस विशिष्ट शिक्षाके उत्तरदायी हैं। अब देखना यह है कि इस शिक्षाके अन्दर कौन कौन सी बातें

हैं जिनके सम्मिलित होनेसे अच्छी शिक्षाकी उत्पत्ति होती है।- शिक्षाके अन्दर इतनी मुख्य बातें होती हैं—

(अ) जिस बालकको शिक्षा दी जाती है, उसकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियोंका भी ख़याल रखना चाहिए।

(आ) ज्ञानसञ्चय या पाठ्यविषय अर्थात् कौन कौन विषयोंके अभ्याससे ज्ञानवृद्धि हो सकती है।

(इ) पाठ्यविषयोंके पढ़ानेकी विधि अर्थात् किस तरीक़ेके अवलम्बनसे किस पाठ्यविषयको पढ़ाना चाहिए जिससे वह विषय बड़ी शीघ्रता और सुगमता पूर्वक समझमें आ जाय।

भिन्न भिन्न शिक्षण सुधारकोंने इन्हींमेंसे किसी एक अवयव-पर विशेष ध्यान दिया है पर इसका मतलब यह नहीं है कि उन्होंने दूसरे अवयवोंकी नितान्त अवहेलना की है। उन्होंने मुख्यतया किसी एक अवयवपर ख़ास ज़ोर दिया है। उन्होंने उसीमें शिक्षाकी इतिश्री समझी है। उनको कहाँतक सफलता प्राप्त हुई, इसका अनुमान पाठक स्वयम् कर सकते हैं। इन तीनों बातोंमें कौनसी बात बड़े महत्वकी है इसका निर्णय करना इतना सरल नहीं है, जैसा पहिले मालूम होता है।

शिक्षाके दो मुख्य उद्देश माने जा सकते हैं—(१) पहिला उद्देश आत्मात्मक या मानसिक शक्तियोंको मज़बूत करना है। ईश्वरने जन्मके समय बालकको कई प्रकारकी शक्तियाँ प्रदान की हैं। उनमेंसे मानसिक शक्तिया भी है। कोई कोई विद्वान शिक्षा-का उद्देश इन्हीं मानसिक शक्तियोंको कामके उपयुक्त बनाना, उनको मज़बूत करना और उनका सुव्यवस्थित विकास ही मानते हैं। इस प्रकारकी शिक्षा बालकको शिष्ट और सभ्य बनानेका उद्देश सामने रखती है। इस उद्देशकी पूर्तिके लिये विशेष प्रकारके पाठ्यविषयोंकी शिक्षा दी जाती है। ऐसे पाठ्यविषयोंमें

साहित्य, इतिहास, गणित आदि सम्मिलित हैं। इस शिक्षाको आदेशात्मक या सभ्यतासम्बन्धी शिक्षा कह सकते हैं। शिक्षाके इस उद्देशके प्रवर्तक कमीनियस, लाक, रूसो और हर्बार्ट माने जाते हैं। उनकी शिक्षण पद्धतियाँ इसी उद्देशका निरूपण करती हैं। कोई कोई हर्बर्ट स्पेन्सरको भी इसी श्रेणीमें सम्मिलित करते हैं। पर आगे चलकर मालूम होगा कि वह दोनों उद्देशोंको एक ही मानता था।

(२) दूसरा उद्देश उदरपूर्त्तिका ख़याल है। किस प्रकार हम सुगमता पूर्वक जीविकोपार्जन कर सकते हैं, इसमें इसी बातकी शिक्षा दी जाती है। दालरोटीको प्राप्त करना ही इस प्रकारकी शिक्षाका उद्देश है। उन्हीं विषयोंकी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे जीविकासम्बन्धी कामोंमें सहायता मिल सके। आधुनिक समयमें भारतवर्षमें शिक्षाका उद्देश यही रह गया है। जो विषय जीविकानिर्वाहमें उपयोगी हो सकें उन्हींका अभ्यास करना चाहिए, चाहे उनसे मनुष्योंकी सब शक्तियोंका सुसङ्गत विकास हो या न हो। इस प्रकारकी शिक्षामें केवल उपयोगिताका ही ख़याल किया जाता है। शिक्षामें ऐसे उद्देशके प्रर्वतकोंको उपयोगितावादी भी कहते हैं। पेस्टलोज़ी, हर्बर्ट स्पेन्सर (कोई कोई लाकको भी मानते हैं) आदिकी गणना इन्हीं उपयोगितावादियोंमें की जाती है। पर हर्बर्ट स्पेन्सरका यह सिद्धान्त था कि जिन विषयोंके पढ़नेसे हम अपनी जीविका प्राप्त कर सकते हैं और जो हमारे लिये बहुत उपयोगी हैं, उनसे हमारी मानसिक शक्तियां भी मज़बूत होती हैं। एकही विषयसे दोनों उद्देशोंकी पूर्ति होती है। इसीमें प्रकृति सन्तुष्ट रहती है।

प्राचीन और नवीन शिक्षा।

यदि थोड़ा भी विचार किया जाय, तो इस बातकी सत्यता सबको मालूम हो सकती है कि यूरोपमें मध्यकाल और प्राचीन-कालमें शिक्षाका एक ही अभिप्राय माना जाता था अर्थात् विद्याका अभ्यास करना। मनुष्य ऐसा प्राणी था जो विद्याका अभ्यास करके स्मरण शक्ति बढ़ा सकता था। विद्याभ्यास करनेका साधन शिक्षा माना जाता था। अध्यापक बालकोंको शब्दोंके हिज्जे, व्याकरणके नियम, शब्दोंके अर्थ आदि तोतेकी तरह कण्ठाग्र कराते थे। गणितमें भी रटानेकी सहायता ली जाती थी। प्राचीन शिक्षामें इस प्रकार केवल स्मरण शक्तिकी वृद्धि होती थी।

आधुनिक और प्राचीन शिक्षामें बड़ा अन्तर आ गया है। आधुनिक समयमें शिक्षाका मुख्य अभिप्राय बिलकुल बदल गया है। नवीन शिक्षामें मनुष्यको कर्त्ता और निर्माणकारी माना जाता है। अब केवल ज्ञानसञ्चयका ख्याल नहीं किया जाता है। पर जिसको ज्ञान दिया जाता है, उसके ऊपर अध्यापकका ध्यान रहता है। मनुष्य क्रियावान् है। वह अपनी शिक्षाका प्रबन्ध स्वयम् बहुत कुछ कर सकता है। उसको अपना विकास करनेका अवसर देना उचित है। यह सिद्धान्त नवीन शिक्षाका हो चला है। शिक्षाकी सफलताका अन्दाज़ा इस बातसे न लगाना चाहिए कि एक बालक कितनी जानकारी रखता है बल्कि वह क्या करता है और वह किस प्रकारका बालक है। वे ही बालक सुशिक्षित माने जा सकते हैं, जो अच्छी बातोंसे प्रेम करते हैं और ऐसे काम करते हैं जो उचित हैं। ऐसे सुकर्मोंके सम्पादन करनेके लिये वे अपनी मानसिक और

शारीरिक शक्तियोंका सुसङ्गत और सुव्यवस्थित विकास करते हैं। ऐसे ही बालकोंको सुशिक्षित कह सकते हैं। नवीन शिक्षा मानसिक शक्तियोंके निष्कर्षणके लिये प्रयत्न करती है। नवीन शिक्षामें अध्यापकका कार्य बालकोंके ऊपर अध्यक्षताका रह जाता है। बालकोंकी आत्मकर्मण्यता उत्तेजित करनेका कार्य अध्यापकोंको नवीन शिक्षामें सौंपा जाता है जिसमें बालक स्वयम् अपनी शिक्षाका प्रबन्ध कर सकें। इसी बातमें नवीन और प्राचीन शिक्षाका अन्तर प्रकाशित होने लगता है। इसीमें दोनों शिक्षाओंका विरोध मालूम होता है। प्राचीन शिक्षाके विरुद्ध मनुष्योंमें एक प्रकारकी घोर प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई है जिसके कारण मनुष्य ज्ञानसञ्चय और कण्ठाग्र करनेके प्रति अपनी घृणा प्रकाशित करनेमें सकुचते नहीं हैं। पर वास्तवमें देखा जाय तो कुछ ज्ञानसञ्चय आवश्यक है क्योंकि कुछ ज्ञानसञ्चयके बिना विकास होना सम्भाव्य नहीं है। जिनको स्कूलमें पढ़नेवाले लड़कोंको पढ़ानेका अनुभव है वे इस बातको भली भाँति जानते हैं कि बार बार रटनेके बिना लड़कोंकी समझमें आये हुए विचार (प्रत्यय) भी कुछ दिनोंमें बिलकुल अस्पष्ट और असम्बद्ध हो जाते हैं। अन्तमें यह भी कहना पड़ता है कि कण्ठाग्र किये बिना विचारोंकी स्वच्छता और स्थिरता नहीं आ सकती है। पर शिक्षण सुधारकोंने शिक्षाका राजमार्ग दिखला दिया है।

चन्द्रशेखर वाजपेयी।

यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षण सुधारक

कमीनियस

यूरोपके शिक्षण सुधारकोंमें कमीनियस बहुत ही प्रसिद्ध हो गया है, यद्यपि ३० वर्ष पहले जर्मनीको छोड़कर, यूरोपके किसी देशमें उसके नामसे कोई भी परिचित नहीं था। आजकल यूरोपकी शिक्षाका मुख्य सञ्चालन उसीके मौलिक सिद्धान्तोंपर हो रहा है। इस महान शिक्षण सुधारकका पूरा नाम जान अमास कमीनियस था।

बाल्यकाल

सं० १५९२ ई० में आस्ट्रियाके अन्तर्गत मोरेविया प्रान्तमें कमीनियसका जन्म हुआ था। उसका पिता आटा चक्कीका काम करता था और मोरेवियन बिरादरी (प्रोटेस्टेन्ट मतका एक सम्प्रदाय विशेष) का एक सभासद था। उसका जन्म बहुत ही विप्लवकारी कालमें हुआ था जब 'तीस वर्षीय युद्ध' के कारण मध्ययूरोपके कई एक रमणीक प्रान्त मरुभूमिमें परिवर्त्तित हो गये थे। बाल्यावस्थामें ही उसके माता पिताका देहान्त हो गया। संरक्षकोंद्वारा उसका पालन पोषण होता रहा। उसके लिखने पढ़ने और अङ्कगणित की शिक्षा उन प्रारम्भिक पाठशालाओंमें आरम्भ हुई, जो

सुधारकाल (रेफार्मेशन) में स्थापित किये गये थे। १६ वर्षकी अवस्थामें वह एक लेटिन पाठशालामें पढ़नेके लिये भेजा गया और जर्मनीके कई एक नगरोंकी पाठशालाओंमें उसने शिक्षा पाई। मदरसोंमें प्रवेश करनेके समय उसकी बड़ी उम्र हो गई थी, इसलिये वह तत्कालीन पठन, पाठन विधिकी सदोषताको भली भांति जान सका। उसने अपने अनुभवसे उस समयकी पाठविधिकी बड़ी ही तीव्र आलोचना की है। उसने एक स्थलपर लिखा है कि उस समयके मदरसे बालकों के अन्दर आतङ्क उत्पन्न करते थे और उनके मनोंके 'क़तल घर' थे। वे ऐसे स्थान थे जहांपर जानेसे बालकोंके अन्दर साहित्य और पुस्तकोंके प्रति घोर घृणा पैदा हो आया करती थी। जहाँ १० या १२ वर्ष उन बातोंके सीखनेमें बीतते थे जो केवल १ वर्षके अध्ययनसे आ सकती थीं, जहाँ जो बातें बहुत ही सहूलियत और मनोरञ्जकताके साथ सिखलानी चाहिये, वे बालकोंके अपरिपक्व दिमागोंमें ठूंसी जाती थीं, जहाँ जो बातें बालकोंके सम्मुख स्पष्टता और विलक्षणताके साथ उपस्थित करनी चाहियें, वे उनके सामने पहेलियोंके स्वरूपमें रक्खी जाती थीं। उन मदरसोंमें शब्दजालका ही आडम्बर था और शब्दोंसे ही दिमागी शक्तियां ह्रास की जाती थीं। इससे ज्ञात होता है कि वह उन मदरसोंसे बहुत ही असन्तुष्ट था और यही असन्तुष्टता उसके दिखलाये हुये भावी सुधारों की मुख्य कारण थी। इसी समय कमीनियस रैटिकस नामी विद्वान और शिक्षण सुधारकके संसर्गमें आया, जिसका प्रभाव उसके ऊपर बहुत ही पड़ा। उन मदरसोंके ऊपर किये गये कमीनियसके ये आक्षेप आधुनिक संस्कृत पाठशालाओं और मकतबोंके ऊपर बहुत अंशोंमें घटित किये जा सकते हैं।

देशनिर्वासन

सं० १६७१ में कमीनियस शिक्षा समाप्त करके अपनी जन्मभूमि मोरेवियाको लौट आया। उसको 'मोरेवियन विरादरी' के एक स्कूलमें नौकरी मिल गई, जहाँ उसने संशोधित शिक्षण विधि और आचारसम्बन्धी नम्र शासन प्रारम्भ करनेके लिये प्रयत्न किया। दो वर्ष बाद उसको धर्मोपदेशकका कार्य करना पड़ा और उसीके सम्प्रदायका एक गिरिजाघर उसको सौंपा गया। उस समय यूरोपमें धार्मिक मतभेद होनेके कारण मनुष्योंको बहुत प्रकारके क्लेश दिये जाया करते थे। उस समय यूरोपमें धार्मिक अत्याचारकी अग्नि प्रचण्ड रूपसे धधक रही थी और कमीनियसको इसीकी आहुति बनना पड़ा। सं० १६७८ में स्पेन निवासियोंने उसके नगरको दखल कर लिया और खूब लूट मार की। कमीनियसकी हस्तलिखित पुस्तकें और सब सामग्री जलकर राख हो गई। सं० १६८१ में सब प्रोटेस्टन्ट मतानुयायी धर्मोपदेशक देशसे निकाल दिये गये। यहीं तक नहीं बल्कि सं० १६८४ में राजाज्ञासे सब प्रकारके प्रोटेस्टन्ट मतानुयायी देशसे निकाल दिये गये। ऐसी आपत्तियोंके अवसरपर कमीनियसने बड़े आत्मिकबल और धैर्यके साथ काम किया और अपने लेखोंसे अपने पीड़ित भाइयोंको वह सन्तोषका अवलम्बन देता रहा। कुछ दिनोंके लिये बोहीमिया प्रान्तके निवासी एक रईसके घरमें वह छिपा रहा। इस रईसके पुत्रोंके अध्यापकके अनुरोधसे उसने उसके कामके लिये अच्छी पाठ विधिके ऊपर एक पुस्तक लिखी। पर धार्मिक अत्याचार इतना अधिक बढ़ा कि अपने सम्प्रदायके अनुयायियोंके साथ कमीनियसको अपने देशसे भाग जाना पड़ा। फिर वह लौटकर अपने देशमें

कभी नहीं आया। अनेक मोरेवियनोंके साथ कमीनियस पोलैन्डके लिस्सा नगरमें निवास करने लगा। यहाँपर एक पुराने मोरेवियन मदरसेमें उसको नौकरी मिल गई। एक तो अध्यापनका कार्य करने और दूसरे अपने कर्त्तव्योंको अच्छी तरह पालन करनेकी बलवती इच्छासे कमीनियसको शिक्षाविषयक अध्ययनमें विशेष उत्तेजना मिलती रही। यहींपर उसने अपनी अध्यापन रीतियोंको शुरूसे निश्चित रूप देनेका काम आरम्भ कर दिया। उसने पाठ्यविधियोंको दार्शनिक आधारपर खड़ा करनेकी पूर्ण चेष्टायें कीं और उसको इस बातमें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई।

पुस्तक प्रकाशन

कमीनियसके सौ वर्ष पहिले भी बड़े बड़े विद्वान शिक्षाके जटिल प्रश्नोंके हल करनेमें लगे हुए थे। यूरोपके शिक्षण विशारद लैटिन जैसी कठिन भाषा (जो संस्कृतके समकक्ष है) को पढ़ानेके लिये एक नवीन और सरल ढङ्गकी खोजमें मस्त थे क्योंकि उस ज़मानेमें मध्यम दर्जेके मदरसोंकी पढाई लैटिन, ग्रीक और हेब्रिव भाषाओंमें ही समाप्त होती थी। सब विद्याओंको प्राप्त करनेकी एकमात्र कुंजी लैटिन भाषा ही थी। लैटिन भाषाका पूर्ण ज्ञान कराना (और उसमें पारङ्गत हो जानेका ही नाम शिक्षा था) अध्यापकोंका मुख्य कार्य समझा जाता था। कमीनियसको शिक्षाकी एक नई रीति निकालनेकी धुन लगी थी। उसने इसी अभिप्रायसे प्रेरित होकर शिक्षा विषयक जितनी पुस्तकें उसको मिल सकीं, उनको पढा और उनके ऊपर खूब मनन किया। उसने बड़े बड़े शिक्षालेखकोंके निबन्ध पढ़े। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि उसको इन पुस्तकों और लेखकोंसे बहुत कुछ सहायता

मिली पर लैटिन भाषा पढ़नेकी रीति जो उसने निकाली है, वह उसीके दिमागकी बात है। उसके लिए वह किसीका ऋणी नहीं कहा जा सकता। केवल इसी एक रीतिके निकालनेसे उसका नाम शिक्षण सुधारकोंके ऊपर रक्खा जाता है और उसने अपने नामको अमर कर दिया है। सब पाठ्य-विषयोंमें इस रीतिसे सहायता मिल सकती है।

इसी समय कमोनियस अपनी सबसे बड़ी पुस्तक "डिडाक्टिका माग्ना" अर्थात् "शिक्षा तत्वोंकी बड़ी पुस्तक" के लिखनेमें लगा रहा। शिक्षा-ससारमें यह अपने ढङ्गकी अनोखी पुस्तक थी। यह पुस्तक पहिले 'शेक' भाषा (जो कमोनियसकी मातृ-भाषा थी) में और फिर लैटिनमें लिखी गई पर इसका प्रकाशन बहुत वर्षोंके बाद किया गया। सं० १६८८ में कमोनियसने एक पुस्तक प्रकाशितकी जिसके कारण उसका नाम और उसके नगरका नाम, समस्त यूरोपमें फैल गया, बल्कि युरोपके बाहर भी। यह "जानुआ लिंगुआसम रेसेराटा" अर्थात् "भाषाओंका फाटक खोल दिया गया" नामकी पुस्तक थी, जो पुस्तक केवल छोटे बालकोंके पढ़नेके लिये बनायी गई थी। उससे उसको जो ख्याति प्राप्त हुई, उसकी पानेकी सम्भावना वह कभी स्वप्नमें भी नहीं करता था। उसके प्रकाशनसे यह विद्वानोंके धन्यवादका पात्र बना और साधुवादके हज़ारों पत्र उसके पास आये। इस पुस्तकका अनुवाद न केवल युरोपीय, भाषाओंमें ही किया गया पर तुर्की, अरबी, फारसी और मङ्गोलियन भाषाओंमें भी कर डाला गया। इस पुस्तककी शैली बहुत ही सीधी सादी और स्वाभाविक थी। प्रतिदिनके परिचित पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हज़ारों साधारण लैटिनके शब्दोंको लेकर, उसने उनको छोटे छोटे

वाक्योंमें रक्खा, जो धीरे धीरे कठिन होते जाते थे। ये वाक्य इस तरतीब और सिलसिलेसे रक्खे गये थे कि उन सबको मिलानेसे परस्पर सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंका एक ढांचा बन जाता था। इससे यह हुआ कि थोड़ेसे ही वाक्योंके अन्दर ज्ञानव्य बातें कूट कूट कर भर दी गई थीं। पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठमें दो स्तम्भ थे। एक ओर लैटिन भाषाका वाक्य था और दूसरी ओर उसीका अनुवाद अन्य भाषाओंमें (जो प्रचलित थीं)। ये पदार्थ बालकोंके अनुभवकी सीमाके बाहर नहीं होते थे। पर यह पुस्तक अनेक दोषोंसे पूर्ण थी। इसमें एक शब्द एक ही मरतबे इस्तेमाल किया गया था। इसके अतिरिक्त सब भाषा और संसारके ज्ञानका एक छोटी सी पुस्तकमें समावेश हो जाना असम्भव बात है और ऐसी पुस्तकसे मनोरञ्जकता दूर भागती है। भाषाके सब शब्द प्रयोगके लिहाज़से एक ही स्थिति नहीं रखते। किन्हीं शब्दोंका खूब प्रयोग होता है और किन्हींका बिल्कुल नहीं।

सं० १७१४ में २६ वर्ष बाद कमीनियसने अपनी उपर्युक्त पुस्तक 'जानुआ' के अनुकूल एक दूसरी पुस्तक "ओर्बिस पिक्टुस" अर्थात् "पदार्थोंका चित्र अङ्कित किया गया" नामक पुस्तक प्रकाशित की। जिस प्रकारकी पुस्तकें 'खिलौना आदि' आजकल बालकोंको मनोरञ्जनके साथ साथ शिक्षा देनेके लिये बनाई जाती हैं, उसी शैलीको लेकर पहिले पहिल इस पुस्तककी रचनाकी गई थी। इस पुस्तकमें शब्दोंका ज्ञान पदार्थोंसे कराया जाता था। प्रत्येक पृष्ठके ऊपर एक चित्र था जिसका वर्णन उसीके नीचे वाक्योंमें किया गया था।

पुस्तकोंको प्रकाशित करनेकी ख्याति उपलब्ध करके उसको इस ओर और भी साहस हुआ। उसने सार्वभौमिक

. न प्राप्त करनेका एक 'मसविदा' तैयार किया जिसका नाम उसने "पान्सोफी" अर्थात् "सर्वज्ञान" रक्खा। इस उद्देशको सफलीभूत करनेके लिये एक पुस्तक-माला प्रकाशित की जानेवाली थी, पर यह काम ऐसा था कि एक मनुष्यसे, चाहे वह कितना महान विद्वान क्यों न हो, पूर्ण नहीं हो सकता था। इसलिये वह एक ऐसे संरक्षककी खोज करता रहा जो उसकी और उसके सहकर्मचारियोंकी सहायता धन द्वारा करता रहे, जब तक कि पुस्तक-मालाका सकलन होता रहे।

अन्य देशोंमें सम्मान

वह जिस सहायताका अभिलाषी था, लिस्सा नगरमें रहकर उसका पाना असम्भव था। पर विद्वानकी हैसियतसे वह सर्वत्र यूरोपके देशोंमें पूजनीय समझा जाने लगा और उसकी उज्ज्वल कीर्ति सारे देशोंमें फैल गई। पहिले मदरसोंको सुधारनेके लिये उसको स्वीडेन देशसे निमन्त्रण मिला पर उसने वहां जाना अङ्गीकार नहीं किया। अपने अंग्रेज़ मित्रोंके अनुरोधसे उसने लन्दनकी यात्रा करना स्वीकार किया। उसके मित्र हार्टलिबकी सिफ़ारिशसे इङ्गलिस्तानकी पार्लमेन्टने कमीनियसको शिक्षा सम्बन्धी सुधार करनेके लिये बुलाया था। वह लन्दनमें तीन महीने रहा पर उन दिनों राजा और प्रजामें युद्ध छिड़ा हुआ था। इसलिये उसकी सब सुधार-सम्बन्धी चेष्टायें विफल गईं। यहांसे स्वीडेन आनेके लिये उसने 'लौयिस डी गियर' नामक एक डच व्यापारीकी चिट्ठी पाई। यह डच सौदागर उन दिनों देशसे निकाले हुये प्रोटेस्टन्ट मतानुयायियोंकी धन द्वारा बहुत ही सहायता कर रहा था। कमीनियसने इस सौदागरको "यूरोपका दानवीर" की उपाधि दी थी। लौयिस डी गियरने कमीनियसको अपने मसविदाको

कार्यमें परिणत करनेके लिये यथेष्ट रुपया दिया। स्वीडेनमें वहांके राजमन्त्रीने कमीनीयससे उसके शिक्षा-सिद्धान्तोंके ऊपर खूब बातचीत की। स्वीडेनके राजमन्त्री और अपने संरक्षक डी गियरके परामर्शसे प्रशिया देशके अन्तर्गत एलबिङ्ग नगरमें रहकर उसने अपने शिक्षा-तत्वोंके ऊपर एक पुस्तक लिखना स्वीकार किया। सं० १७०७ में ट्रान्सिलवेनियाके राजकुमारने वहांके मदरसोंमें कौन कौनसे सुधार किये जायं, इस बातकी सलाह लेनेके लिये कमीनियसको बुलाया। सं० १७११ में यह फिर लिस्सा नगर वापस आया। पर उन्हीं दिनों पोलैन्डमें युद्ध आरम्भ हो गया जिससे लिस्सा नगरका सर्वनाश हुआ। यह घटना सं० १७१३ में हुई। लिस्सा नगरके नाश हो जानेसे कमीनियसकी सब हस्तलिखित पुस्तकें, सब सामग्री और बड़ा पुस्तकालय नष्टभ्रष्ट हो गये। यह भी धार्मिक अत्याचारका एक नमूना था। यद्यपि कमीनियस और उसके कुटुम्बसे इस आपत्तिसे बचनेके लिये लिस्सा भाग गये थे, तौभी इस हानिसे कमीनियसके ऊपर बड़ा धक्का लगा और अन्ततक उसको इस हानिसे शोक होता रहा।

अन्तिमकाल

इस विपत्तिके बाद कमीनियस कुछ दिनों तक जर्मनीमें इधर उधर घूमता रहा। अन्तमें यह आम्स्टर्डामको चला गया। यहांपर लारेन्स डी गियरने, जो उसके पूर्व संरक्षकका पुत्र था, उसके रहनेके लिये समुचित प्रबन्ध कर दिया और यह आनन्दपूर्वक अपना अन्तिम कालक्षेप करने लगा। डी गियरकी दानशीलतासे उसने शिक्षाके ऊपर अपनी सब

पुस्तकोंको एकत्रित करके प्रकाशित किया। अन्तिम काल तक वह पोपका विरोधी बना रहा। ८० वर्षकी परिपक्व अवस्थामें सं० १७२८ में उसका प्राणान्त हुआ।

उसका समस्त जीवनकाल क्लेशमें ही व्यतीत हुआ। उसका सारा जीवन काम करनेमें ही बीता। यद्यपि उसको जीवनकालमें अपने कामोंके फलोंको देखनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, तोभी शिक्षाके इतिहासमें इस प्रभावशाली और उदार शिक्षण सुधारकका नाम सब सुधारकोंसे उच्च है।

कमीनियसके शिक्षण–सिद्धान्त

पाठकोंको ज्ञात हो गया होगा कि कमीनियस ही पहिला मनुष्य था जिसने दर्शनशास्त्रकी सहायतासे शिक्षा विषयके ऊपर बिलकुल नया प्रकाश डाला। उसके पूर्व कुछ तत्व-वेत्ताओंने शिक्षाके सिद्धान्त प्रवर्त्तित किये थे पर स्वयम् उनको कार्यमें परिणत नहीं कर सके। उन मौलिक-तत्वोंको प्रयोग-में लानेका काम वे दूसरे कार्य्य कर्त्ताओंके लिये छोड़ गये थे। दूसरी ओर कमीनियसके पूर्व कुछ अध्यापकोंने शिक्षाकी नई रीति निकाली थी और उन रीतियोंके अवलम्बनसे अध्या-पनमें उनको बड़ी सफलता प्राप्त हुई थी। पर इन रीतियोंका आधार कोई शास्त्रीय सिद्धान्तोंके ऊपर नहीं था। कमीनियस दार्शनिक भी था। उसने बेकन आदि बड़े बड़े तत्ववेत्ताओंकी पुस्तकोंका परिशीलन किया था। और वह अध्यापक भी था। उदरनिर्वाहके लिये उसने मदरसोंमें पढ़ानेका काम भी किया था। उस ज़मानेकी शिक्षाकी व्यवस्थासे असन्तुष्ट होकर उसने प्रकृतिके नियमोंके निरीक्षणसे एक नई शिक्षाप्रणाली सोच निकाली। जिस बातका आधार प्रकृतिके नियमोंके ऊपर रहता है, उसकी बुनियाद बहुत ही पुख्ता होती है और

कभी उसके नाश हो जानेकी सम्भावना नहीं की जा सकती। यह बिल्कुल एक निर्विवाद विषय है कि जिस प्रकार प्राकृतिक नियम शरीरके साथ काम करते हैं, वैसे ही मानसिक उन्नति-के लिये प्राकृतिक नियमोंका पालन करना आवश्यक होता है। कमीनियस प्राकृतिक नियमोंका बहुत ही क़ायल था। पर मनके ऊपर किन किन नियमोंके प्रभाव पड़ते हैं, इसका निश्चित रूपसे जानना, यद्यपि असम्भव नहीं है, तोभी दुष्कर अवश्य है। इन नियमोंका बोध करना उतना सरल नहीं है जितना शारीरिक नियमोंका जानना। जो मनुष्य इन नियमोंको समझने और प्रकट करनेके लिये प्रयत्न करता है, वह हमारे धन्यवाद-का पात्र है। हम उस मनुष्यके बहुत ही अनुगृहीत हैं जिसने इस कार्यको करनेका बीड़ा उठाया और अपने जीवनके अनेक वर्ष इसकी पूर्त्तिके निमित्त अर्पण किये। कमीनियस ही ऐसा मनुष्य था जिसमें दार्शनिक और अध्यापक दोनोंके ही गुण पाये जाते थे।

कमीनीयस कहता है कि हमारी ज़िन्दगी तीन पहलूकी है। वानस्पतिक, पाशविक और मानसिक या आध्यात्मिक। गर्भमें पहली अवस्था पूर्णरूपमें पाई जाती है और अन्तिम स्वर्गमें। उसी मनुष्यको सुखी समझना चाहिए जो इस जगतमें आरोग्य शरीरके साथ उत्पन्न होता है, उससे भी अधिक वह मनुष्य सुखी है जो स्वस्थ आत्माके साथ इस जगतके बाहर कूच करता है। ईश्वरीय इच्छाके अनुसार मनुष्य-को सब चीज़ें जाननी चाहिये, अपना और सब पदार्थोंका स्वामी होना चाहिए और पुरुषार्थ कर चुकनेपर फलकी आशा ईश्वरपर छोड़ देनी चाहिये। इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रकृतिने हमारे अन्दर [१] विद्या, [२] पुण्य और [३] भक्तिके बीज बो दिए

हैं। इन बीजोंसे अङ्कुर निकलकर वृक्षउत्पन्न हों, यही शिक्षाका मुख्य उद्देश है।

मदरसोंसे शिक्षाके इस मुख्य उद्देशकी सिद्धि बिल्कुल नहीं होती है। उनमें नैसर्गिक नियमोंका पालन नहीं किया जाता। उनमें सब पदार्थोंके मूलतत्वों, उनके पारस्परिक सम्बन्धों और वास्तविक स्वरूपके ऊपर ज़ोर नहीं दिया जाता, यहाँ तक कि मातृभाषाका माध्यम होना भी सबको स्वीकार नहीं है और संस्कृत और अंग्रेज़ी भाषाओंके पढ़नेमें ही १० या २० वर्ष व्यतीत करने पड़ते हैं। व्याकरण, नियमो, परिभाषाओं और कोषोंके कण्ठाग्र करनेमें ही जीवनका बहुमूल्य समय नष्ट किया जाता है। अंग्रेज़ी भाषाके द्वारा जो ज्ञानकी प्राप्ति हमको १० या २० वर्षमें निरन्तर परिश्रम करनेके बाद होती है, वह ज्ञान हमको अपनी मातृभाषाओंके द्वारा केवल १ या २ वर्षके मेहनतसे बड़ी आसानीसे मिल सकता है। इस असफलताका कारण यही है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली प्रकृतिका अनुसरण नहीं करती। जो बात या नियम प्राकृतिक (वा स्वाभाविक) होते हैं वे बहुतही आसानीसे और बिना दिक़तके, समझमें आ जाते हैं। पठन पाठनमें किसी प्रकारका बाहरी दबाव न होना चाहिए। जिस प्रकार मछलीको तैरना, पक्षियोंको उड़ना और पशुओंको दौड़ना जन्मसेतेही आजाते हैं, उसी प्रकार बालकोंको विद्या आनी चाहिए। ज्ञानप्राप्ति करनेकी लालसा प्रत्येक मनुष्यमें पाई जाती है। भोजन, छादन और व्यायाम, आदिके ठीक नियमोंके पालनसे शरीर जैसे बढ़ता है, वैसे ही मनके ऊपर विशेष ध्यान देनेसे मानसिक उन्नति भी लब्ध की जा सकती है। यदि हम यह जानना चाहें कि शिक्षा और विद्यासे कैसे हमको अच्छे परिणाम मिल सकते हैं तो हमको

प्रकृति और कलाके रीतियों और नियमोंपर ध्यान देना चाहिए।

एक किसान खेतमें बीज बो देता है। बीजोंसे किस प्रकार अङ्कुर महीपर निकलते हैं, यह बात उसको नहीं मालूम, पर वह अङ्कुर निकलनेके लिये प्राकृतिक आवश्यकताओंके ऊपर ध्यान देता है। वह भूमिको जोतता है। पानीसे सींचता है। और भी कितनी ही आवश्यक बातोंका पालन करता है। बालकोंके मनोंके अन्दर ज्ञान भरनेके समय इन्हीं प्राकृतिक नियमोंका ख्याल रखना चाहिए। हम देखते हैं कि प्रकृति उचित समयका इन्तिज़ार किया करती है। प्रकृति जब सब सामग्रीको जुटालेती है, तब वह उसको आकारमें परिणत करती है। पर हमारी शिक्षण पद्धतिमें उठते बैठते इन वसूलोंके विरुद्ध काम किया जाता है। जब बालकोंके मन ज्ञानके लिये तैयार भी नहीं होते हैं, तभी हम उनको शिक्षा देना प्रारम्भ कर देते हैं। सामग्री एकत्रित करनेके पूर्व ही हम स्वरूपके लिये प्रयत्न करते हैं। पदार्थोंके बिना देखे ही हम बालकोंको शब्दोंका पाठ पढ़ाने लगते हैं। जब बालकोंको किसी विदेशीय भाषाकी शिक्षा दी जाती है, तो पहिले हम बालकोंके सम्मुख व्याकरणके नियम आदि सामग्रीके रूपमें उपस्थित कर देते हैं, जहाँ हमको खुद सामग्री अर्थात् भाषाको ही बालकोंके आगे रखना चाहिए। जिस भाषाके विषयमें व्याकरणके नियम बनाये जाते हैं, उस भाषाको पहिले सिखाना चाहिए। उस भाषाकी अच्छी अच्छी पुस्तकोंके पाठ बालकोंको पहिले पढ़ाना चाहिये, तब पीछे व्याकरणके नियम आने चाहिए। पहिले दृष्टान्त समझाने चाहिए। फिर इनके बाद अमूर्त नियमोंको सिखलाना चाहिए।

प्रकृतिका काम प्रत्येक वस्तुके आभ्यन्तरिक हिस्सेसे शुरू होता है और पहिले बेढंगी सूरत बनती है, तब पीछेसे

अवयवोंकी वैचित्रता आती है। घर बनानेके उद्देशसे पहिले घरका एक नक़शा बनाया जाता है। फिर घरका बनना प्रारम्भ किया जाता है। अन्तमें घरकी सजावटके ऊपर ध्यान जाता है। इसी प्रकार पठन पाठनमें पहिले अन्दरूनी बात अर्थात् विषयका समझना, आना चाहिए। तब जो विषय समझमें आ गया है, उसके द्वारा स्मरणशक्ति, वाक्शक्ति और हाथों की उन्नतिके लिये कोशिश करना चाहिये। भाषा, विज्ञान और कलाकी शिक्षामें मोटी मोटी बातोंका ज्ञान प्रथम कराना चाहिए। फिर इसके बाद दृष्टान्तों और नियमों द्वारा खूबियों-को स्पष्ट करना चाहिए। शिक्षाके इस मौलिक सिद्धान्तके विपरीत आजकल स्कूलों और पाठशालाओंमें अस्वाभाविक रीतिका अनुसरण किया जाता है।

ऊपर उल्लिखित नियमोंके अनुकूल कमीनियस बालकोंकी शिक्षाके लिये कई एक उपयोगी तत्वोंको लिख गया है। उसकी यह सम्मति थी, जो वास्तवमें यथार्थ भी प्रतीत होती है, कि बालकोंको वही पढ़ाना चाहिये, जिसके पढ़नेकी इच्छा हो। पठन पाठनमें बालकोंकी उम्र और पाठ्य विधिके ऊपर ध्यान देना योग्य है। जहाँतक सम्भव हो सके, इन्द्रियोंके ही द्वारा ज्ञानकी प्राप्ति होनी चाहिये। इस बातपर कमीनियसने बहुत ही ज़ोर दिया है। यूरोपकी शिक्षाके इतिहासमें कमीनियस पहिला विद्वान था जिसने शिक्षण-पद्धतिमें इन्द्रियोंको सबसे ऊँचा स्थान दिया। उसने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि शिक्षा निम्न लिखित क्रमसे होनी चाहिए—प्रथम, इन्द्रियोंको कुशल बनाना चाहिए; फिर स्मरण, शक्तिके ऊपर ध्यान देना चाहिए, तब बुद्धिको बढ़ानेकी ज़रूरत है और अन्तमें आलो-चना-शक्तिका विकास होना चाहिए। यही प्राकृतिक क्रम है।

बालकोंको पहिले इन्द्रियोंद्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। जो कुछ उनकी बुद्धिने ग्रहण किया है, वह इन्द्रियोंद्वारा ही आया होगा। इन्द्रियोंद्वारा जानी हुई और प्रत्यक्ष की हुई बातें स्मरण-शक्तिमें एकत्रित रहती हैं। काम पड़नेपर कल्पनाद्वारा उन बातोंका प्रत्यक्षीकरण हो सकता है। एक बातको दूसरेसे मुक़ाबिला करनेपर बुद्धिमें साधारण विचार उत्पन्न होते हैं और तब सत् असत्, सच्चे और झूठेका वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। कमीनियसको पूर्ण विश्वास था कि यदि *शिक्षा* उपर्युक्त क्रमसे दी जाय, तो बच्चोंकी, शिक्षा चाहे वे छोटे ही क्यों न हो, बहुत ही मनोरञ्जक बनायी जा सकती है। बच्चोंकी शिक्षा मनोरञ्जक बनानेके लिये कमीनियसने बाहरी तरीक़ोंको काममें *लानेमें गफ़लत* नहीं की। वह चाहता था कि विद्योपार्जनकी बलवती उत्कण्ठा प्रत्येक बच्चेमें उत्पन्न की जाय। इस उत्कण्ठाको जागृत करनेके लिये मा बाप, अध्यापक, मदरसोंकी *इमारतें, मदरसोंकी सामग्री, पाठ्यविषय, पाठनविधि और* सरकार—सभी प्रयत्न करें, यही कमीनियसको अभीष्ट था। इसीको सामने रख कर कमीनियस लिख गया है कि—

(१) माता पिताओंको विद्या और विद्वानोंकी प्रशंसा करनी चाहिए, *बच्चोंको सुन्दर छपी हुई पुस्तकें दिखलानी चाहिए*... और अध्यापकोंकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

(२) गुरुओंको दयावान होना चाहिये और पितृवत् कार्य करना चाहिए। उनको *प्रशंसा और पारितोषिक* बांटना चाहिए। बच्चोंको ध्यानसे देखनेके लिये सामग्री होनी चाहिए।

(३) मदरसोंकी इमारतें खूब रोशनीदार, हवादार और रमणीक होनी चाहिए और उनको तस्वीरों, नकशों, ढांचों, और नमूनोंके संग्रहसे सुसज्जित करना चाहिए।

(४) पाठ्यविषय बच्चोंकी समझकी दृष्टिसे कठिन न होने चाहिए। दिल बहलानेवाले भागोंपर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(५) पाठ्यतरीक़ा स्वाभाविक होना चाहिए और जो कुछ पाठ्यविषयमें अनुपयोगी और बच्चोंकी ग्रहण शक्तिके लिये कठिन प्रतीत हो, उसका परित्याग कर देना चाहिए।

(६) अधिकारी वर्गको परीक्षाएँ निश्चित करना योग्य है और गुण ग्राहकता दिखलानी चाहिए।

यूरोप जैसे शीत प्रधान देशके लिये कमीनियसने लिखा है कि मदरसेकी पढ़ाई प्रातःकाल दो घन्टे और फिर दोपहरके बाद दो घन्टे होनी चाहिए। प्रातःकाल बुद्धि और स्मरण-शक्तिकी शिक्षा दी जानी चाहिए और दोपहरके बाद हाथ और ग्राकको काममें लानेकी शिक्षा होनी चाहिए। हमारा देश भी विलक्षण देश है। यहांपर यूरोपका अन्ध अनुकरण करना ही धर्म समझा जाता है। चाहे यूरोपमें बुरी प्रथाएँ वा कुरीतियोंके हटानेकी कोशिश होती हो, पर भारतवर्षमें उन्हींका आदर सम्मान किया जाता है। भारतवर्ष उष्णता प्रधान देश है। यहांपर प्रातःकाल मदरसोंकी पढ़ाई होनी चाहिए, जो एक स्वाभाविक बात होगी। इसके विपरीत देशकालके नितान्त विरुद्ध १० बजेसे ४ बजे तक पढ़ाईका समय रक्खा गया है जिससे बच्चोंमें शारीरिक ह्रासके लक्षण दिखलाई पड़ने लगते हैं और जो हमारे सुभीतेका भी नहीं है।

आजसे अनुमान २५० वर्ष पूर्व यूरोपमें इस बड़े शिक्षण सुधारकने मातृभाषाकी उपयोगिताको भली भांति समझा था। प्रत्येक देशमें वहांकी भाषाके माध्यमद्वारा सब प्रकारकी शिक्षा देनी चाहिए। उसकी धारणा थी, जो अक्षरशः सत्य

है, कि प्रत्येक देशमें वहींकी भाषाका प्रचार हो, तद्देशीय भाषाओंमें ज्ञानभण्डार ऐसा चाहिए जिससे प्रत्येक जातिको पढ़ने लिखनेमें सुविधाएँ प्राप्त हों। वह यह नहीं चाहता था कि देशीय भाषाओंके स्थानपर लैटिन भाषा रक्खी जावे। उसकी सम्मति थी कि अन्तर्जातीय सम्बन्धके लिये और शास्त्रीय विषयोंको अन्य देशोंमें प्रचलित करनेके लिये यद्यपि लैटिन भाषाकी आवश्यकता बनी रहेगी, तथापि शिक्षाके द्वारकी कुञ्जी देशीय भाषाओंमें ही होनी चाहिये। लैटिनके माध्यम होनेमें उसको घोर विरोध था। वह यह नहीं चाहता था कि ज्ञानभण्डार तक थोड़ेसे चुने हुये व्यक्तियोंहीकी पहुंच हो सके और सब वञ्चित रहें। प्रकृति यहांपर यह सङ्केत करती है कि सार्वजनिक लाभ होनेकी सम्भावनासे देशीय भाषाओं द्वारा सब प्रकारकी शिक्षा देना बहुत ही लाजिमी है। जिस व्यक्तिको ऐसा करनेमें आनाकानी है, वह जातिकी घृणाका पात्र और होनेवाली भयङ्कर हानियोंका जिम्मेवार समझा जायगा। २५० वर्ष पूर्व जिस बातको विद्वान कमीनियसने मुक्त कण्ठसे स्वीकार कर लिया था, आजकल भारतवर्षमें अनेक मनुष्योंको वह भी माननीय नहीं है। विदेशी और मृत भाषाओंके ऐसे हिमायतियोंको कमीनियस-से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अंग्रेजी भाषाकी धारा प्रवाह स्तुति करनेवालोंको हठाग्रह छोड़ देना चाहिए। अंग्रेजी भाषाको शिक्षाका माध्यम नहीं बनाना चाहिए, इसके माध्यम होनेसे देशको जो क्षति पहुंच रही है, उसका स्वप्नमें भी हमको आभास नहीं मिल सकता है।

कमीनियस अनुचित दण्ड देनेका पक्षपाती नहीं था। मानसिक त्रुटियोंको दूर करनेके लिये डण्डेका प्रयोग करना

नितान्त भूल है। हां, नैतिक अपराधोंके लिये दण्डेका प्रयोग करना उचित और सार्थक भी है। कमीनियसके ज़मानेमें दण्डेका बहुत ही अधिक प्रचार था पर उसने इसके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई और लोगोंने उसकी बातको ध्यानसे सुना भी।

सबके लिये शिक्षा आवश्यक है—ऐसी कमीनियसकी धारणा थी। अन्तमें यूरोपके सब देशोंने इस धारणाको सत्य माना और जातिके सब बच्चोंको मुफ्त और अनिवार्य्य शिक्षा दी जावे, इस बातको बहुत देशोंने प्रचलित किया है। पर २५० वर्ष पहिले इस बातको प्रकाशित करनेवाला कमीनियस ही था। इस बातको प्रमाणित करनेके लिये जिस युक्तिका प्रयोग कमीनियसने किया है, वह सचमुच बहुत ही प्रशंसनीय है। सब मनुष्योंको (चाहे स्त्री, चाहे पुरुष) शिक्षाकी आवश्यकता है, चाहे वे अमीर हों या ग़रीब, चाहे वे नागरिक हों या ग्रामीण, चाहे वे लड़के हों या लड़कियाँ। शिक्षा प्रदान करनेमें मनुष्यकी सामाजिक, आर्थिक वा राजनैतिक अवस्थाको दृष्टिमें न रखना चाहिए। शिक्षा सबके लिये समान होनी चाहिए। जो जन्मते हैं, उनको सिनेको मनुष्य बनना है—इसलिये उनको शिक्षाकी आवश्यकता होती है और इसी अभिप्रायसे ईश्वरने मनुष्यके छोटे बच्चोंको असहाय और किसी भी कामके योग्य नहीं उत्पन्न किया है जिसमें उनको पढ़ने लिखने और सीखनेका अवसर प्राप्त हो। इस युक्तिमें मौलिकताकी झलक पाई जाती है और यह बहुत ही सारगर्भित प्रतीत होती है। राजाका यह परम कर्त्तव्य है कि वह प्रजाको शिक्षित बनानेकी कोशिश करे, जिसमें सब मनुष्य साक्षर ही दिखलाई पड़ें। ऐसी ही शिक्षाके प्रचारसे भारतवर्षका हित साध्य है। अन्यथा

अस्तित्वके निकट संग्राममें कहीं उसका पता भी नहीं मिलेगा। सब मनुष्य ईश्वरके पुत्र हैं और उनको शिक्षित बनानेमें हम ईश्वरकी आज्ञाका पालन करें।

कमीनियसकी शिक्षण-पद्धतिमें शिक्षाके प्रचारके लिये चार प्रकारके मदरसोंको स्थान मिला है। [१] प्रत्येक घरमें माताओं-को चाहिए कि वे गोदसे ही बच्चोंको शिक्षा देने लगें। [२] प्रारम्भिक मदरसे जिसमें ६ वर्षसे लेकर १२ वर्ष तकके उम्रवाले बच्चे शिक्षा पावें। [३] लैटिन स्कूल जो प्रत्येक नगरमें स्थापित किये जायँ और जिनमें १२ वर्षसे १८ वर्षवाले बालक विद्यो-पार्जन कर सकें। और [४] विश्वविद्यालयकी शिक्षा और देश पर्य्यटनसे ज्ञानप्राप्ति होनी चाहिये। इन मदरसोंमें लड़के और लड़कियोंकी समान शिक्षा हो और सामाजिक भेद भाव-का भी ख़याल करना चाहिए। पर विश्वविद्यालयसे भावी अध्यापक और समाजके नेताओंको ही लाभ उठाना चाहिए।

आजकल अनेक शिक्षितोंकी यह धारणा है कि पेस्टलोज़ी और फ्रौबल ही 'बालोद्यान' (किंडरगार्टेन) की परिपाटी के आविष्कारकर्त्ता हैं और उन्होंने पहिले पहल छोटे बच्चोंकी शिक्षाके ऊपर ध्यान दिया था। पर शायद पाठकोंको यह जान-कर आश्चर्य होगा कि पेस्टलोज़ीके बहुत काल पूर्व कमीनियसने छोटे बच्चोंकी शिक्षाकी पूर्ण आवश्यकता समझी थी और इसी अभिप्रायसे प्रेरित होकर उसने अपनी पद्धतिमें बालोद्यानको भी समुचित स्थान दिया था। उसने एक छोटीसी पुस्तक 'बचपनका मदरसा' नामक लिखी थी जिसमें ६ वर्षकी उम्र तक बच्चोंको किस प्रकार पालन पोषण करना चाहिए, इसकी शिक्षा दी गई है। जितना छोटे बच्चे अपने सम वयस्क बच्चोंमें सीख सकते हैं, उतना वे अपने बसया बैठों

रहकर कभी नहीं सीख सकते हैं। बड़ोंके साथ रहनेसे उनको उतनी स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती।' छोटे बच्चोंको आमोद प्रमोद और दिल बहलावके साथ शिक्षा देनेका कर्म रखना चाहिए। बच्चोंको चुपचाप बैठनेकी आदत नहीं डलवानी चाहिए। बच्चोंको चुपचाप बैठनेकी अपेक्षा खेलना कूदना बहुत ही लाभदायक है क्योंकि इससे उनकी शक्तियोंको विकास होनेका अवसर प्राप्त होता है। खेलों और मनोरञ्जन द्वारा बच्चोंकी ज्ञानेन्द्रियोंकी शिक्षा होनी चाहिए।

कमीनियसने भली भांति अनुभव किया था कि माताकी गोदसे ही बच्चोंकी शिक्षा प्रारम्भ होनी चाहिए। कोई वस्तु कुछ नहीं, यह है, इसका अभाव है, कहां, कब, भेद और सादृश्य—ऐसे विचारोंसे बच्चोंको बाल्यावस्थामें ही दार्शनिकतत्वोंका आभास होने लगता है। जल, भूमि, हवा, अग्नि, आदिके ज्ञानसे बच्चोंको भौतिकशास्त्रका बोध होता है। प्रकाश अन्धकार, छाया, रङ्ग आदिके ज्ञानसे भी भौतिक शास्त्रके मूलतत्त्व बच्चोंको आने लगते हैं। आकाश सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि के देखनेसे बच्चोंको ज्योतिष शास्त्रका ज्ञान होता है। इतिहासकी शिक्षा इन बातोंसे प्रारम्भ होती है। कौनसे कार्य कल किये गये थे, कौन अतिथि घरपर आये थे' आदि। इससे ज्ञात होता है कि बच्चोंको विज्ञान और कलाके सब मूलतत्त्व बचपनमें ही मालूम हो जाते हैं। यदि माताएँ होशियार हों, तो वे अपने बच्चोंको बहुत ही निपुण बना और देशका बड़ा कल्याण भी कर सकती हैं।

कमीनियसने शिक्षाके प्रश्नोंके हल करनेमें मनोविज्ञानकी सहायता ली थी। सीधी सादी बातोंमें शिक्षा आरम्भ होनी चाहिये और अन्तमें पेचीदा होनी चाहिए। दृष्टान्तोंद्वारा

शास्त्रीय बातोंका शिक्षण होना चाहिए और शिक्षामें मूर्त्त पदार्थोंसे अमूर्त्त पदार्थों तक ऐसा क्रम होना चाहिये।

यहां तक तो कमीनियसकी शिक्षण पद्धतिकी खूबियोंका वर्णन किया गया है, पर संसारमें कोई भी वस्तु पूर्ण नहीं है उसमें कुछ दोष अवश्य पाये जाते हैं। यही हाल उसकी शिक्षण पद्धतिका भी है। कमीनियसने उपमाओंको बहुत ही अपनाया है। उसने उपमाओंके जोरसे बहुतसी बातोंको सिद्ध करनेकी कोशिश की है पर यह मालूम होना चाहिए कि उपमाओंके प्रयोगका दायरा बहुत ही परिमित है। उससे किसी विवादास्पद विषयकी सिद्धि नहीं हो सकती। अलबत्ते वे दृष्टान्तके लिये बहुत ही काफी होती हैं और मज़मूनको स्पष्ट कर देती हैं। जैसे इस जगतके लिये एक ही सूर्य है और वह समस्त संसारमें प्रकाश वा उष्णता पहुंचाता है, उसी प्रकार मदरसेमें या एक दर्जेमें एक ही अध्यापकका होना जरूरी है—इस उपमाके प्रयोगसे भ्रम फैल जानेकी सम्भावना है।

कमीनियस ज्ञानका परम भक्त था। सबको ज्ञानकी उपासना करनी योग्य है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि सब मनुष्य सब ज्ञानकी बातें वा नियम जाननेकी शक्ति रखते हैं। मनुष्यकी शक्तियां परिमित हैं। उनको संसारका पूर्ण ज्ञान होना असम्भव नहीं, तो दुष्कर अवश्य है। हां, वह भली भांति एक या दो शास्त्रोंको अवश्य जान सकता है। इसके विपरीत कमीनियस चाहता था कि सब मनुष्य सब ज्ञानकी बातोंको जान जावें। लेकिन वृद्धावस्थामें कमीनियसको अपनी यह त्रुटि ज्ञात हो गई थी और उसने इस त्रुटिको स्वीकार भी कर लिया था।

कमीनियसने शिक्षा रीतिपर बहुत जोर दिया है लेकिन

उसने इसकी त्रुटियोंपर ध्यान नहीं दिया। उसका विश्वास था कि प्रशस्त शिक्षा विधिके अनुसरणसे प्रत्येक मनुष्य हर एक प्रकारके ज्ञानकी प्राप्ति कर सकता है—जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस संसारमें मिलना असम्भव है। यहां पर भी मनुष्यों की शक्तियोंके सान्तक होनेके विचारसे काम लेना चाहिए। प्रारब्ध भी कोई वस्तु है, या वैज्ञानिक भाषामें हम कह सकते हैं कि मनुष्यमें कुछ जन्मके संस्कारोंके भी प्रभाव होते हैं। मनुष्य जो चाहे, वह उसको नहीं आ सकता। शायद उसका ख़याल था कि मनुष्य भी बनाये जा सकते है।

पर ये दोष विद्वानों और बड़े बड़े सुधारकोंके दोष हैं। इनसे कमीनियसकी ख्यातिमें कुछ भी भेद नही आ सकता है। जब हम यह विचार करते हैं कि कमीनियसने ही पहिले पहल शिक्षा विधिको निकाला था, उसने ही पहिले भाषाओंके शिक्षणमें फेर फार किया था, उसने ही पहले मदरसोंके प्रश्नोंको हल करनेमें मनोविज्ञानकी सहायता ली थी, उसने ही पहिले मदरसोंमें प्रकृतिका अध्ययन जारी किया था—तब कमीनियसको शिक्षण सुधारकोंमें सबसे ऊंचा स्थान देने और शिरोमणि कहनेमें हमको थोड़ा भी सङ्कोच नहीं होता।

जान लाक

जान लाक अंग्रेज़ दार्शनिकोंमें बहुत विख्यात हो गया है। ऐसे महान दार्शनिकका जन्म इङ्गलैन्डके समरसटशायर प्रान्तके अन्तर्गत रिङ्गटन नामक रमणीक ग्राममें सं० १६८६ में हुआ। लेकिन उसके माता पिता ब्रिस्टल शहरके समीप एक गांवमें रहा करते थे। इसी गांवमें रहकर प्रायः लाकने अपनी बाल्यावस्थाके बहुत वर्ष व्यतीत किये। उसके माता पिता "प्युरिटन" (प्रोटेस्टेन्ट पन्थका एक सम्प्रदाय विशेष) मतानुयायी थे। बाल्यावस्थामें ही उसकी माताका देहान्त हो गया। उसका पिता एक बड़ी सम्पत्तिका स्वामी था और वह देहातमें वकालत किया करता था। यद्यपि लाकके पिताने उसकी प्रारम्भिक शिक्षापर विशेष ध्यान नहीं दिया, तौभी उसके आचरणका प्रभाव उसके ऊपर बहुत पड़ा। जब लाक बालक था, उसका पिता उसके ऊपर कठोर शासन किया करता था, पर उसके बड़े होनेपर वह उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करने लगा। लाकका जन्म इङ्गलैण्डके बड़े विप्लवकारी युगमें हुआ था। उस समयके राजनैतिक अत्याचारोंके कारण राजा और प्रजामें घोर युद्ध चल रहा था। "लाङ्ग पार्लमेन्ट"* के सभासदोंने बादशाह चार्ल्सकी स्वेच्छाचारिताका बड़ा विरोध किया। लाकका

* ईसाकी १७वीं शताब्दीमें जब इंगलैंडमें राजा प्रजाके बीच भयंकर विरोध हो रहा था उस समय पार्लमेंट की एक विशेष बैठक नामको २१ वर्ष (सं० १६६६-१७१७) तक रही। इस कारण इसे लाग या लंबी पार्लमेंट कहते हैं।

पिता सभासदोंके इस विरोधसे सहमत था। थोड़े ही दिनोंके बाद उसका पिता पार्लमेन्टकीफौज़में जाकर सम्मिलित हो गया और राजाके विरुद्ध लड़ने लगा। उसके पिताके इस कार्यके कारण यद्यपि उसके कुटुम्बपर बहुत आपत्तियां आईं। तथापि लाकके चरित्र-संगठन और भावी धार्मिक भावोंके ऊपर इसका बहुत ही असर पड़ा। इस प्रकार उसकी भावी अलौकिक बुद्धिका विकास उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

सं० १७०३ में उसके पिताके एक मुअक्किल, करनल पाफम, ने उसको वेस्टमिनिस्टर स्कूलमें भरती करा दिया। इस मदरसेमें वह लगभग ६ वर्षतक पढ़ता रहा। पर लाकके इस छात्रावस्थाका कुछ भी हाल नहीं मालूम है। हाँ, जिन परिपक्व सम्मतियोंको उसने अपनी एक पुस्तकमें प्रकाशित की हैं, उनसे इतना अवश्य पता लगता है कि वह उस ज़मानेके सार्वजनिक मदरसोंकी अस्वाभाविक शिक्षासे सन्तुष्ट नहीं था। बीस वर्षकी अवस्थामें सं० १७०६ में उसने क्राइस्ट चर्च कालेज की पढ़ाई आरम्भ की। उन दिनों इङ्गलैन्डके विश्वविद्यालयोंमे धार्मिक चर्चा बहुत हुआ करती थी। उस समय जो वाद विवादकी प्रथा विद्यार्थियोंमें प्रचलित थी, उसकी लाकने तीव्र आलोचना की। उसकी सम्मतिमें यह प्रथा अच्छी नहीं जँचती थी। कालेजमें वह एक होनहार बालक समझा जाता था। सं० १७१३में लाकने बी० ए० और सं० १७१५ में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। सं० १७१८ में वह क्राइस्ट चर्च कालेजमें ग्रीक भाषाका व्याख्याता बनाया गया। इसके थोड़े ही दिन बाद उसके पिता और छोटे भाईके देहान्त हो गये। इस समय भी उसकी लेखनी सुस्त नहीं थी। वह बराबर कुछ न कुछ लिखा ही करता था।

स०१७१६ में वह अलङ्कार शास्त्रका व्याख्याता बनाया गया और बहुतसे विद्यार्थियोंको घरपर उनके जाकर पढ़ाया भी करता था। इस समय अपने एक सहपाठी विलियम गडोलफिनकी सिफारिशसे उसको सर वाल्टर वेनके साथ मन्त्रीकी हैसियत-में यूरोपमें पहिले सरनये जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कुछ ही दिनों बाहर रहकर स० १७२३ में लाक इङ्गलैन्ड वापस आ गया और आक्सफर्डमें डाक्टरी की परीक्षाके लिये तैयारी करने लगा। पर बिना उपाधी लिए ही उसने डाक्टरी पढ़ना छोड दिया। सं० १७२३ में लार्ड शैफ्टेसबरीसे लाककी जान पहिचान हुई—इससे लाकके जीवनमें बड़े बड़े उलटफेर हो गये। इस मित्रतासे, जो कभी भङ्ग नहीं हुई, लाकके भविष्य जीवनपर बहुत प्रभाव पड़ा। स० १७२४से लाक लार्ड शैफ्टेस-बरीके साथ लन्दनमें रहने लगा। लार्ड एशले (या शैफ्टेसबरी) के घरपर वह डाक्टर, सलाहकारी और अध्यापकके काम एक ही साथ सम्पादन किया करता था। इस समय फुरसत मिलने पर वह दर्शनशास्त्र और राजनीतिके गहन प्रश्नोंपर विचार करता रहता था।

स्वास्थ्य ठीक न होनेके कारण लाक फ्रान्स चला गया। निरोग होनेपर वह पेरिसमें दो वर्ष तक सर जान वेङ्कसके पुत्र-को पढाता और वहांके दृश्योंका अवलोकन करता रहा। सं० १६७६ में लाक फ्रान्ससे इंगलैन्ड वापस आया। उसकी अनुपस्थितिमें इंगलैन्डमें अनेक राजनैतिक परिवर्तन होगये थे। जब वह फ्रान्स नहीं गया था तभी उसके मित्र लार्ड एश-लेका निरादर होना आरम्भ हो गया था और वह पदच्युत भी हो गये। लार्ड एशले कारागृहमें बन्द थे पर सौभाग्यवश वे पुनः संगठित मन्त्रपरिषद्के अध्यक्ष बनाये गये और उन्होंने

कारागृहसे मुक्ति पाई। लार्ड एशलेके कहनेपर लाक फिर उनके घरपर अपनी पहिली हैसियतमें रहने लगा। बादशाह-की अप्रसन्नताके कारण लार्ड एशलेको इस अध्यक्षताके पदको त्याग देना पड़ा। उस समयकी राजनैतिक व्यवस्था बहुत ही अस्त व्यस्त थी। सं०१७३८में लार्ड शैफ्ट्सबरी राजद्रोहके बड़े अपराधमें पकड़े गये और अभियोग चलनेपर वे फिर लन्डनकी टावर (दुर्ग) में क़ैद कर दिये गये। पर पीछेसे वे छोड़ दिये गये। राजाके विरुद्ध षडयन्त्रकी रचनामें असफलता प्राप्त करनेपर लार्ड एशले हालैन्डको भाग गये और आम्सटर्डामके निवासी बन गये जिसमें वे फिर न पकड़े जा सकें। इन षड्यन्त्रोंमें सम्मिलित होनेकी शंका लाकपर भी की जा रही थी। क्राइस्ट चर्च कालेजके डीनके नाम लार्ड सन्डरलैन्डकी चिट्ठी आयी कि उनको लाकका नाम कालेजसे काट देना चाहिए। इस आज्ञाका पालन पूरी तौर से किया गया। सं० १७४०में लाक हालैन्डको भाग गया। वहांपर वह ६ वर्षतक रहा। इंगलैन्ड वापस आने पर उसने अपना एक निबन्ध छपवाया।

सं० १७४८ में सर फ्रैन्सिस और लेडी मैशमसे उसका परिचय हुआ और उन्हींके साथ उनके घर पर वह अन्तिम दिन तक रहता रहा। यहांपर उसके अनेक मित्र हो गये थे। उनकी मित्रतासे उसके दिन बहुतही आनन्दमें बीतते थे। वार्तालाप और दार्शनिक बातोंसे वह अपनी मित्रमण्डली-को मुग्ध रखता था। बीच बीचमें उसकी पुस्तकोंका भी प्रका-शन होता जाता था। इससे उसकी प्रतिष्ठा दिनपर दिन बढ़ती जाती थी। कभी कभी वह राजनैतिक विषयोंके ऊपर भी [illegible] प्रकाशित [illegible] तरहसे वह अपने मित्रों और उनके लड़कोंकी सहायता करनेके लिये

हमेशा तैयार रहता। छोटे छोटे बच्चे उसके मनोरञ्जक किस्से कहानियां सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते थे। उसके चाचा-का पुत्र पीटर किङ्ग उसके साथ रहने लगा था। उसको उसने अपने ही खर्चसे पढ़ाया और उसीके नामपर वह अपनी संपत्तिका बहुत हिस्सा और अपनी हस्त लिखित पुस्तकें लिख गया। इस प्रकार उसका अन्तिम दिन समीप आगया छिटित और सं० १७६१ में वह इस मर्त्यलोकसे चल बसा। उसकी कीर्तिकी ध्वजा अब भी संसारमें उड़ रही है। उसका स्वभाव बहुत ही सीधा सादा था। वह धर्मनिष्ठ और दयालु था।

लाककी शिक्षण पद्धति

आरम्भमें ही यह बतलादेना आवश्यक होगा कि लाक और उसकी शिक्षण पद्धतिको समझनेके लिये उसके दो महान् गुणोंके ऊपर हमको विशेष ध्यान देना चाहिए। उसका पहिला प्रशंसनीय गुण यह था कि वह सत्यवादी था। सत्य-बोलने वा जाननेकी इच्छा उसमें सदा रहती थी। सत्य-के लिये वह सत्यका भक्त था। उसका दूसरा गुण बुद्धिमें उसका पूर्ण विश्वास था क्योंकि बुद्धि ही सत्यकी पथप्रदर्शक है। जिन मनुष्योंने खूब मनन नहीं किया है, वे प्रायः कह बैठेंगे कि सत्य जाननेकी इच्छा प्रत्येक व्यक्तिमें पाई जाती है और सत्य बोलनेकी इच्छा भी लगभग सभी मनुष्योंमें होती है। पर थोड़ा विचार करनेसे इस कथनकी निस्सा-रता मालूम हो जायगी। कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनकी सत्यताको हम दूसरोंके कहने पर मानलेते हैं। यदि सत्य बोलने वा जाननेकी उत्कण्ठा हममें है, तो हमको सब बातों-की सत्यताकी जांच करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। पर

ऐसे कितने मनुष्य हैं जो स्वयम् सत्य प्राप्तिके लिये सब बातोंकी जांच पड़ताल करते हैं। इसके विपरीत हम दूसरोंके कथनोंको शास्त्रीय वाक्य मानकर झट विश्वास कर लेते हैं। साधारण मनुष्यों और लाकमें केवल इतना ही भेद था कि लाक सत्यपर पहुंचनेके लिये स्वयं हमेशा दम भरा करता था। शास्त्रीय दृष्टिसे यह सत्य-अनुसन्धान बहुत ही प्रशस्त और श्रद्धेय बात है। लेकिन व्यवहारिक जगतमें यह सत्य अनुसन्धान बहुत ही परिमित हो जाता है। यदि हम स्वयम् सब बातोंकी सत्यताकी जांच करें, और किसी दूसरेके अनुभवका विश्वास न करें तो हमको सहस्रों वर्षोंमें उपलब्ध किये गये ज्ञान की तिलाञ्जुलि दे देना पड़ेगी। लाकने इस दृष्टिसे सत्यके ऊपर जरूरतसे अधिक जोर दिया। यदि ऐसी ही सत्यकी आकांक्षा विद्यार्थियोंमें आजकल उत्पन्नकी जाये तो मुशकिलसे कोई ही विद्यार्थी परीक्षामें सफलता प्राप्त कर सकता। लाकके अनुसार ज्ञानकी प्राप्ति मानसिक प्रत्यक्षीकरण है। जानना ही देखना है। इस बातमें दूसरे किसी विद्वानका देखना हमारे लिये काफ़ी नहीं होगा। इस बातके लिये ईश्वरने हमको देखनेकी शक्तियां प्रदान की हैं। उनकी सहायता ही लेना हमारे लिये हितकर है।

बुद्धिमें लाकका बड़ा विश्वास था। उसकी धारणा थी कि मनुष्यको बुद्धिसे धोखा नहीं मिल सकता और न बुद्धि मनुष्यको कभी पश्चात्ताप करनेका अवसर दे सकती है। लाक बुद्धिको सत्यकी कसौटी बतलाता है और कहा करता था कि सत्यवादी धीमान पुरुषोंमें कभी मतभेद नहीं हो सकता। बुद्धिमें उसकी असीम श्रद्धाका यह कथन एक उदाहरण मात्र है पर उसने स्वयम् अपनी पुस्तक "कान्डक्ट आफ दी

अन्डरस्टैन्डिंग" में स्वीकार किया है कि मानुषिक बुद्धिमें दिशादर्शक चुम्बक सुईके समान कुछ परिवर्तन हुआ करते हैं और जो मनुष्य इसीके भरोसेपर अपने जीवनरूपी जहाज़को चलाते हैं, उनके जहाज़के नाश होजानेकी बहुत ही सम्भावना है। इसी पुस्तकमें लाकने सत्य परिणामपर पहुंचनेके लिये कुछ बातोंका उल्लेख किया है। वे ये हैं—(१) बुद्धिको पूर्ण शिक्षा मिली हो, (२) विशेष परिणामपर पहुंचनेके लिये या उसके विरुद्ध कोई निश्चय बुद्धिने पहिलेसे न कर लिया हो, (३) ठीक निर्णय निर्धारित करनेके लिये बुद्धिके पास सब सामग्री होनी चाहिए। व्यावहारिक जगतमें बहुधा ही ये बातें पूरी तौरपर पाई जाती हैं। सत्यकी प्राप्तिकेलिये लाकने बुद्धि शक्तिके गुणोंकी जो प्रशंसा की है वह अत्युक्ति ही कही जा सकती है। एक मानसिक शक्तिकी इतनी प्रशंसा करना शेष अन्य शक्तियोंका निरादर करनेके बराबर है। आगे चलकर हमको ज्ञात होगा कि लाककी शिक्षणपद्धतिमें दूसरे मानसिक भावों का (अर्थात् राग, द्वेष, लोभ मोह आदि) बहुत ही कम विचार किया गया है और कल्पना शक्तिका तो उसने बिल्कुल बहिष्कार ही कर दिया। कल्पना शक्तिसे हानिके सिवाय लाभकी आशा नहीं की जा सकती। बहुधा देखा जाता है कि केवल बुद्धिके प्रयोगसे हम बिल्कुल असम्भव निर्णयपर पहुंच जाते हैं—ऐसे निर्णय जो सिद्ध किये हुए परिणामोंसे विरुद्ध हैं।

कलके या उस ज़मानेके मदरसोंके अध्यापकोंकी राय है। पर यदि ठीक तौरपर देखा जाय, तो इन दोनों सम्मतियोंमें बहुत ही अन्तर है। मदरसोंकी शिक्षामें स्मरण शक्तिके ऊपर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसके विपरीत लाकके सिद्धान्तोंके अनुसार बच्चोंको सत्यज्ञान मिले, ऐसा प्रयत्न करना निष्फल है और जो कुछ बच्चे बचपनमें ज्ञानके नामसे बातें सीखते हैं, वे ज्ञानकी बातें नहीं हैं। बातोंका बुद्धिसे प्रत्यक्षीकरण ही ज्ञान कहा जा सकता है। बच्चोंमें बुद्धिका इतना विकास नहीं होता कि वे ज्ञान प्राप्तिके मार्ग पर चल सकें। तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि फिर शिक्षकको किस प्रकारका प्रयत्न करना चाहिये। लाकने इस प्रश्नका बहुत ही समुचित उत्तर दिया है। हां, यह यथार्थ है कि बच्चोंमें बुद्धिका काफ़ी विकास नहीं होता, अतः सत्यज्ञान उनके लिए अप्राप्य है, पर शिक्षक बच्चोंको बुद्धि विकास होनेकी अवस्थाके लिये तैयार कर सकता है। उसको प्रयत्न करना चाहिए कि प्रथम बच्चोंकी शारीरिक आरोग्यता ठीक रहे और दूसरे उनका चरित्र-गठन प्रशस्त हो और वे सदाचारी बनें।

लाकके अनुसार शिक्षा तीन प्रकारकी होनी चाहिये— शारीरिक, मानसिक और नैतिक। युरोपमें लाक शारीरिक शिक्षाका पहिला प्रवर्त्तक समझा जाता है। और है भी ठीक, क्योंकि बच्चोंकी शिक्षा पद्धतिमें लाक शारीरिक शिक्षाको सबसे ऊंचा स्थान देता है। यह उसकी पद्धतिकी एक विलक्षणता है। इसका कारण यह है कि उसने स्वयम् औषधि शास्त्रका अध्ययन किया था और दूसरे जन्मसे लाकको अपने स्वास्थ्यसे चिन्तायें बनी रहती थीं। उस ज़मानेमें जब इङ्गलिस्तानमें शारीरिक उन्नति और शारीरिक व्यायामके ऊपर

बहुत ही ध्यान दिया जाता था तो कुछ आश्चर्य नहीं है कि लाकने क्यों शारीरिक शिक्षाका इतना समर्थन किया।

लाककी "शिक्षा" पुस्तक इस वाक्यसे आरम्भ की गई है कि "संसारमें सुखी दशाकी यही पूर्ण व्याख्या है कि मनुष्यके स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन हो। जिस मनुष्यको ये दानों (अर्थात् स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर) प्राप्त हैं, उसको और किसी बातकी बहुत कम आकांक्षा करनी पड़ेगी। जिस मनुष्यमें इन दोनोंमेंसे किसी एकका भी अभाव है वह संसारमें दूसरी किसी बातके लिए योग्य नहीं समझा जा सकता"। लाकने शारीरिक शिक्षाके लिये निम्नलिखित बातोंके ऊपर ज़ोर दिया है—

(१) शीत और उष्णताके प्रभावोंसे बचनेके लिये बच्चोंको मज़बूत बनाना चाहिये और इसलिये गर्मी और सर्दीकी अधिकतासे बच्चोंकी रक्षा करनेके ऊपर बहुत कम ध्यान देना चाहिए। यह बात भारतवर्षके बच्चोंको बहुत ही उपयोगी है।

(२) बच्चोंको कमसे कम अपने पैरोंको, यदि सब शरीरको नहीं, ठण्डे पानीसे अवश्य धोना चाहिए। यह तो लाकने ठण्डे देशके बच्चोंके लिये लिखा है पर हमारे देशमें बच्चोंको नित्य-प्रति स्नान करना चाहिए।

(३) उनको पानीमें तैरना सीखना चाहिये और जितना सम्भव होसके उतना उनको खुली हवामें रहना चाहिए।

(४) उनको ढीले वस्त्र पहिनने चाहिए।

(५) उनको विद्यार्थी जीवनके पहिले तीन या चार सालों तक मांस बहुत ही कम खाना चाहिए और शक्कर और मसालोंकी भी मात्रा कम होनी चाहिए। यद्यपि मांस भक्षण एक विवादस्पद विषय है, तो भी यूरोपीय और अमरीकन बहुत-

से विद्वान इतना कहनेको तैयार होगये हैं कि मांस भोजन मनुष्यका स्वाभाविक भोजन नहीं है। इसको छोड़ देना ही मनुष्यके लिये श्रेयस्कर है। भारतवर्षमें ऐसे भोजनकी उपयोगिता बिल्कुल नहीं बतलाई जा सकती। पर तो भी अन्ध अनुकरणसे इसकी वृद्धि, विशेषकर विद्यार्थियोंमें, अधिक हो रही है।

(६) उनके लिए शराब या अन्य नशीले द्रव पदार्थ वर्जित हैं। उनके भोजनोंका समय निश्चित न होना चाहिए।

(७) बच्चोंको जल्दी ही सो जाना चाहिए और प्रातःकाल जल्दी ही उठना चाहिए। उनकी शय्या मुलायम न होनी चाहिए।

(८) औषधियोंका बहुत कम इस्तेमाल करना चाहिए और आमाशयके ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिए।

ऊपर लिखे हुए उपदेशोंको पढ़कर यही कहनेको मन चाहता है कि इनमें हमारे शास्त्रकार मनुकी सर्वमान्य आज्ञाओंकी झलकसी पाई जाती है। ऊपर उल्लिखित उपदेशोंका यह निचोड़ है कि खुली हुई हवाकी अधिकता, व्यायाम और निद्रा, सादा भोजन, बहुतही कम औषधि प्रयोग, बहुत गर्म वस्त्रों या तंग वस्त्रोंको न पहिनना और शिर और पैरोंको ठण्डा रखना ही विद्यार्थियोंके लिये हित कर है। इन उपदेशोंमें तपका भाव पाया जाता है कि शरीरको इस प्रकार अभ्यस्त करना चहिए कि वह सुख दुःख और शीतोष्णताके प्रभावोंको अनुभव न कर सके। इन उपदेशोंका अभिप्राय बच्चोंके शरीरोंको मज़बूत बनाना ही है।

लाकके लिये शिक्षाका मुख्य उद्देश चरित्रगठन है। बच्चोंकी शिक्षा पद्धतिमें सदाचार, व्यावहारिक चतुरता, शिष्टा-

बहुत ही ध्यान दिया जाता था तो कुछ आश्चर्य नहीं है कि लाकने क्यों शारीरिक शिक्षाका इतना समर्थन किया।

लाककी "शिक्षा" पुस्तक इस वाक्यसे आरम्भ की गई है कि "संसारमें सुखी दशाकी यही पूर्ण व्याख्या है कि मनुष्यके स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन हो। जिस मनुष्यको ये दोनों (अर्थात् स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर) प्राप्त हैं, उसको और किसी बातकी बहुत कम आकांक्षा करनी पड़ेगी। जिस मनुष्यमें इन दोनोंमेंसे किसी एकका भी अभाव है वह संसारमें दूसरी किसी बातके लिए योग्य नहीं समझा जा सकता"। लाकने शारीरिक शिक्षाके लिये निम्नलिखित बातोंके ऊपर ज़ोर दिया है—

(१) शीत और उष्णताके प्रभावोंसे बचनेके लिये बच्चोंको मज़बूत बनाना चाहिये और इसलिये गर्मी और सर्दीकी अधिकतासे बच्चोंकी रक्षा करनेके ऊपर बहुत कम ध्यान देना चाहिए। यह बात भारतवर्षके बच्चोंको बहुत ही उपयोगी है।

(२) बच्चोंको कमसे कम अपने पैरोंको, यदि सब शरीरको नहीं, ठण्डे पानीसे अवश्य धोना चाहिए। यह तो लाकने ठण्डे देशके बच्चोंके लिये लिखा है पर हमारे देशमें बच्चोंको नित्य-प्रति स्नान करना चाहिए।

(३) उनको पानीमें तैरना सीखना चाहिये और जितना सम्भव होसके उतना उनको खुली हवामें रहना चाहिये।

(४) उनको ढीले वस्त्र पहिनने चाहिए।

(५) उनको विद्यार्थी जीवनके पहिले तीन या चार सालों तक मांस बहुत ही कम खाना चाहिए और शक्कर और मसालोंकी भी मात्रा कम होनी चाहिए। यद्यपि मांस भक्षण एक विवादास्पद विषय है, तो भी यूरोपीय और अमरीकन बहुत-

-से विद्वान इतना कहनेको तैयार होगये हैं कि मांस भोजन मनुष्यका स्वाभाविक भोजन नहीं है । इसको छोड़ देना ही मनुष्यके लिये श्रेयस्कर है। भारतवर्षमें ऐसे भोजनकी उपयोगिता बिल्कुल नहीं बतलाई जा सकती । पर तो भी अन्ध अनुकरणसे इसकी वृद्धि, विशेषकर विद्यार्थियोंमें, अधिक हो रही है।

(६) उनके लिए शराब या अन्य नशीले द्रव पदार्थ वर्जित हैं। उनके भोजनोंका समय निश्चित न होना चाहिए।

(७) बच्चोंको जल्दी ही सो जाना चाहिए और प्रातःकाल जल्दी ही उठना चाहिए। उनकी शय्या मुलायम न होनी चाहिए।

(८) औषधियोंका बहुत कम इस्तेमाल करना चाहिए और आमाशयके ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिए।

ऊपर लिखे हुए उपदेशोंको पढ़कर यही कहनेको मन चाहता है कि इनमें हमारे शास्त्रकार मनुकी सर्वमान्य आज्ञाओंकी झलकसी पाई जाती है। ऊपर उल्लिखित उपदेशोंका यह निचोड़ है कि खुली हुई हवाकी अधिकता, व्यायाम और निद्रा, सादा भोजन, बहुतही कम औषधि प्रयोग, बहुत गर्म वस्त्रों या तंग वस्त्रोंको न पहिनना और शिरऔर पैरोंको ठण्डा रखना ही विद्यार्थियोंके लिये हित कर है। इन उपदेशोंमें तपका भाव पाया जाता है कि शरीरको इस प्रकार अभ्यस्त करना चहिए कि वह सुख दुःख और शीतोष्णताके प्रभावोंको अनुभव न कर सके। इन उपदेशोंका अभिप्राय बच्चोंके शरीरोंको मज़बूत बनाना ही है।

लाकके लिये शिक्षाका मुख्य उद्देश चरित्रगठन है। बच्चोंकी शिक्षा पद्धतिमें सदाचार, व्यावहारिक चतुरता, शिष्टा-

चार और विद्याके ऊपर ध्यान देना चाहिए। इन गुणोंमें सदाचार सबसे मुख्य है, फिर उसके बाद व्यावहारिक चतुरता, फिर शिष्टाचार और अन्तमें विद्याका स्थान आता है। शिक्षामें, लाकके अनुसार, चरित्र-गठन या सदाचारको सबसे पहिले रखना चाहिए। चरित्र-गठनके सामने अन्य सब विचारों और गुणोंको त्याग देना चाहिए। शिक्षकको अपने व्याख्यानों द्वारा, पाठों द्वारा और अपने उदाहरणसे बच्चोंके अन्दर चरित्रगठन या सदाचार उत्पन्न करना चाहिए। जितने भी गुणोंकी वृद्धि की जावे, उनको इस सर्व श्रेष्ठ गुणके पोषक होना चाहिए।

बुद्धि और स्वातन्त्र्य विचारको विकास करनेके लिये गणितकी शिक्षा देना लाकके मतमें बहुत ही लाभ दायक है। इस गणितकी शिक्षासे यह न समझना चाहिये कि बच्चोंको गणितमें आचार्य बनाना है पर उनको बुद्धिमान और विवेकी मनुष्य बनाना है। यद्यपि मनुष्य जन्मसे ही विवेकी उत्पन्न होते हैं, तो भी इस गणितकी शिक्षासे उनकी बुद्धि और भी तीव्र हो जाती है और इससे तर्क करने और सोचनेकी आदत उनमें क्रमशः आ जाती है। इसी तार्किक शक्तिसे, जो गणितके अभ्याससे उनको मिलती है, वे ज्ञानकी दूसरी बातोंकी परीक्षाकर सकते हैं।

लाककी शिक्षण पद्धतिमें, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, शिक्षाके लिहाजसे विद्याको अन्तिम स्थान दिया गया है। जहां तक पुस्तकोंके पठन पाठनमें सदाचार वा स्वातन्त्र्य विचारके मिलनेकी सम्भावना हो सकती है, वहांतक तो लाक पुस्तकोंके पठन पाठनका पक्षपाती है, पर ज्योंही यह गुण उनसे नहीं प्राप्य है, त्योंही वे त्याज्य हैं और लाकके मतमें उनकी कुछ भी वकत नहीं। विद्याओंके पढ़ानेमें भी इसी कसौटीको

हमेशा सामने रखनेके लिये उसने शिक्षकोंको उपदेश दिया है। यदि लैटिन, ग्रीक या हेब्रिव भाषाओंका या विज्ञान और तर्क शास्त्रका शिक्षण दिया जावे, तो भी यही विचार सामने रखना चाहिए। उसकी दृष्टिमें, व्यावहारिक जीवनके कर्त्तव्योंको भली भांति पालन करनेवाला एक सुदृढ और आरोग्य शरीर लैटिन और ग्रीक भाषाओंके पठन पाठनसे कहीं बढ़कर है। पढ़ना, लिखना और शिक्षण मनुष्यके लिए आवश्यक है पर सदाचार और बुद्धिकी अपेक्षा ये कम आदरणीय हैं। कोई भी मनुष्य ऐसा मूर्ख नहीं है जो विद्वानका आदर सदाचारी और बुद्धिमान पुरुषके आगे अधिक करता हो। लाककी इस कसौटीसे कालिदासकी प्रणीत पुस्तकें, मेघदूत, रघुवंश, शकुन्तला आदि और भी कितनी ही पुस्तकें जो सृष्टिक्रमके विरुद्ध बातोंसे भरी हुई हैं—सबकी सब त्याज्य समझी जा सकती हैं क्योंकि मदरसों वा पाठशालाओंमें ऐसी पाठ्य पुस्तकोंको पढ़ानेसे न तो चरित्रगठन वा सदाचारका लाभ ही विद्यार्थियोंको प्राप्त हो सकता है और न उनकी तर्कना शक्तिका ही विकास हो सकता है। उनको शिक्षाक्रममें रखनेसे नैतिक भ्रष्टाचारकी वृद्धि अवश्य होगी, जिससे कि विद्यार्थियोंके नैतिक अवनतिकी बड़ी संभावना होगी। बच्चोंके अन्दर सदाचारके लिये उत्कण्ठा पैदा करनी चाहिए क्योंकि संसारमें यह एक अमूल्य गुण समझा जाता है। इसीके अवलम्बनसे संसारमें मनुष्योंको सफलता वा असफलता मिलती है। शिक्षाका पहिला और अन्तिम उद्देश चरित्रगठन या सदाचार लाभ है। जिसप्रकार शरीरकी शक्तिका परिचय शारीरिक दुःखों, वेदनाओं और क्लेशोंके सहन करनेसे मिलता है, उसी प्रकार मानसिक शक्ति अर्थात् सदाचारका परिचय दुःखों और क्लेशोंके सहन करनेसे मिलता है। वही

मनुष्य सदाचारी है जो स्वयम् अपने ऊपर शासन कर सकता है। मनकी कुवासनाओं और बुरे विचारोंको रोकना, अपनी इच्छाओंके प्रतिकूल करना, और अपनेको सांसारिक सुखोंसे जान बूझकर वञ्चित रखना, और उन्हीं बातोंका सम्पादन करना जिनके करनेकी आज्ञा बुद्धिसे मिलती है—ये ही कुछ तरकीबें हैं जिनके पालनसे हमको चरित्र-गठनकी शिक्षा मिल सकती है। लाकके अनुसार यह शक्ति बहुत श्लाघनीय है और सब गुणोंमें शिरोमणि है। इसलिए लाक बल पूर्वक लिखता है कि बच्चोंको शुरुसे ही, अर्थात् गोदसे ही, अपनी अनावश्यक और अगणित इच्छाओंके दमन करनेकी शिक्षा देनी चाहिए—ऐसी इच्छाओंको जिनको बुद्धि ग्रहण करनेकी गवाही नहीं देती है। बच्चोंको जो बात सबसे पहिले बतलाना चाहिए, वह यह है कि जो वस्तु उनको दी गई है, वह इसलिए उनको नहीं दी गई कि जिसमें वे प्रसन्न हों बल्कि वह इसलिए दी गई है कि वह उनके लिए योग्य समझी गई थी। इसीको शिक्षामें शिक्षाकी इति श्री समझना चाहिए। नैतिक शिक्षाका उद्देश चरित्र-गठन ही होना चाहिए।

शारीरिक और नैतिक शिक्षाके समान मानसिक शिक्षा भी उपदेश लाभके लिहाज़से होनी चाहिए। शिक्षाका कार्य यह नहीं है कि वह बच्चोंको किसी एक विज्ञान या कलामें आचार्य या पूर्ण पण्डित बनादे। इसके विपरीत शिक्षाका उद्देश यह होना चाहिए कि बच्चोंके अन्दर आचार्य या पूर्ण पण्डित बननेकी योग्यता आजावे और उसके द्वारा उनके मनोंमें स्वातन्त्र्य विचारके भाव उत्पन्न हो जायें। शिक्षाकी सहायतासे वे स्वयम् अपनी बुद्धिको प्रयोगमें ला सकें और अन्य परम्पराके मार्गको छोड़कर कुछ तर्कसे भी काम लिया

करें। वे जो कुछ सीखें उसमें बुद्धिसे काम लिया करें। मनमें बहुतसी बातोंको जमा करने और ज्ञान भण्डारसे यही एक लाभ निकल सकता है कि उनके छांटने छांटने और सत् असत् जाननेमें बुद्धिको योग्य काम मिलता है।

पुस्तकोंको पढ़ने या पढ़ानेके समय लोककी इस कसौटी को अवश्य ध्यानमें रखना चाहिए। इस कसौटीको ध्यानमें न रखनेसे अनेक अनर्थोंके उत्पन्न हो जानेकी सम्भावना है। यदि चोरको केवल विद्याओंकी ही शिक्षा दी जावे और चरित्र-गठन या सदाचारकी आवश्यकता न दर्शाई जावे (जिससे वह भी सदाचारी हो जाय), तो चोर अपने कर्मोंमें और भी निपुण हो जावेगा। विद्याओंका पठन पाठन उसके लिए विष है। इसी प्रकार यदि छोटे बच्चोंको शृङ्गार रस या भोग विलासके भावोंसे रञ्जित पुस्तकें पढ़नेको दी जावेंगी, तो बच्चोंके चरित्र दूषित या नष्ट हो जावेंगे। ऐसी पुस्तकें उनके लिए विष तुल्य हैं। जो मनुष्य सदाचार और बुद्धिसे सम्पन्न हैं, उनको विद्यादान देनेसे उनका, और उनसे संसारका लाभ होगा। उनके लिये विद्या सोनेमें सुगन्ध उत्पन्न कर देती है। विद्याके ऐसे उपयोगी उद्देश्यको कृतकार्य करनेके लिए उदार चरित्रवान शिक्षकोंकी आवश्यकता है जो विद्यार्थियोंके स्वभावोंको सुधारें, उनके आचरणोंको प्रशस्त बनावें और उनके बुरे मानसिक झुकाओंको दूर कर दें। ऐसे अध्यापकोंके आधीन बच्चोंको सुपुर्द करना चाहिए जो विद्यार्थियोंके मानसिक पवित्रताकी रक्षा कर सकें और उनके स्वभावोंको कलुषित होनेसे बचावें। यदि ऐसे शिक्षकोंका समुचित प्रबन्ध हो जाय, तो सदाचार और बुद्धिके साथ साथ विद्याकी भी प्राप्ति हो जायगी।

अनेक प्राठ्य वार्तोंके एकत्रित करनेकी अपेक्षा विचार स्वातन्त्र्यको उत्साहित करना और केवल ज्ञानके हासिल करनेकी अपेक्षा मानसिक शक्तियोंको उद्भावित करनेके हेतु पठन पाठनकी शरणमें आना, लाककी दृष्टिमें बहुत ही अच्छे हैं। लाककी सम्मतिमें अध्ययनका मुख्य भाग पुस्तकोंको सरसरी निगाहसे पढ लेनेमें नहीं समाप्त हो जाता। पुस्तकों को पढनेके समय मनन और वाद विवादसे भी काम लेना चाहिए क्योंकि मनन और वादविवादसे ही जानी हुई बातें नपाई जा सकती हैं और उनकी सत्यताकी जाचकी जा सकती है। केवल पढनेसे बहुतसी सामग्री एकत्रितकी जा सकती है। उस सामग्रीका अधिकाश निरर्थक और मनसे निकाल देनेके लायक होगा। मनसे निरर्थक सामग्रीको निकाल देनेका काम मननकी सहायतासे किया जा सकता है। फिर बची हुई सामग्रीसे एक सुन्दर मकान तैयार हो सकता है। मकान बननेके पश्चात् उसके आकार, नींवकी मजबूती, ठोसापन और उसके भिन्न भिन्न भागोंकी सुडौलता आदिके ऊपर विचार किया जा सकता है। यह बात मित्रोंके साथ वाद विवाद करनेसे प्राप्य है। यही हाल मनमें आये हुए विचारों-का भी होता है। पढनेसे मनमें विचारोंका समूह एकत्र होना है। मनन करनेसे अनावश्यक विचार मनसे निकाल दिए जाते हैं और केवल उपयोगी विचार शृङ्खलाबद्ध रह जाते हैं जिनसे मानसिक शक्तियोंका विकास होता है। मित्रोंके साथ इन विचारोंके ऊपर वाद विवाद करनेसे सत्यासत्यका निर्णय और तर्क करनेकी त्रुटियोंका बोध होता है।

कमीनियसके समान लाक सर्वसाधारणकी शिक्षाका पक्ष पाती नहीं है। वह केवल कुलीन मनुष्योंके बालकोंकी शिक्षा-

का समर्थन करता है। उसकी दृष्टिमें बालकोंको स्कूल भेजना ठीक नहीं है। उनकी शिक्षाके लिए घरेलू शिक्षकोंको नियुक्त करना चाहिए। मगर कितने मनुष्य ऐसे शिक्षकोंको रखकर अपने बालकोंको पढ़ानेमें समर्थ हैं। यद्यपि वह लैटिन पढ़ानेके विरुद्ध है तो भी सभ्य पुरुष बननेके अभिप्रायसे और शिष्टा-चार सीखनेकी चेष्टासे वह चाहता है कि बालकोंको लैटिन पढ़ाई जावे। जो बातें पुस्तकों और अध्ययनसे मानसिक शिक्षाके लिए प्राप्त हैं। उनके अतिरिक्त कुछ ऐसे और हुनर हैं जिनका सीखना एक सभ्य पुरुषके लिए नितान्त आवश्यक है जैसे घोड़े पर चढ़ना, तलवार चलाना, नाचना और कुश्ती सीखना। विद्यार्थियोंको एक दो उद्योगधन्धोंमें भी प्रवीण या कुशल होना चाहिए।

कमोनियसके समान लाक भी शिक्षामें शिक्षण विधिको लानेके लिए ज़ोर देता है। पढ़ना सिखानेके समय विशेष उपायोंके अवलम्बनसे बालकोंके मन इस प्रकार मुग्ध रक्खे जा सकते हैं जिससे वे यह समझें कि मानो वे खेल रहे हैं। पर खेल और आमोद प्रमोदके साथ साथ बच्चोंको शिक्षा भी होनी जाती है। जब बच्चोंको पढ़ना आ जावे तब उनकी आवश्यकता नुसार उनके हाथोंमें मनोरञ्जक पुस्तकें पढ़नेके लिये देना चाहिए। पर बच्चोंके ज्ञानके द्वार उनकी ज्ञानेन्द्रियां ही हैं जिनके द्वारा ध्यानपूर्वक देखनेसे उनको ज्ञानकी प्राप्ति होती है। मनन करनेसे ही ये सब बातें पीछेसे एक साथ मिल जाती हैं। पहिले मोटी मोटी या मोटी शिक्षा देनी चाहिए और फिर गूढ़ बातोंकी। यह भी लाकका शिक्षण सिद्धान्त है। विद्वानोंको अध्ययन करनेमें इसी सिद्धान्तकी सहायता लेनी चाहिए। जानी हुई बातोंको पढ़ानेके बाद अज्ञात बातों के ऊपर जाना चाहिए।

यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि ऐसा शिक्षण सुधारक जिसने बच्चोंके पढ़ानेमें मनोरञ्जक तरीकोंके अवलम्बन करनेकी सलाह दी हो कभी भी शारीरिक दण्ड देनेका पक्षपाती हो सकता है। उसकी सम्मति है कि शारीरिक कठोर दण्डसे हानिके सिवाय लाभकी कुछ भी सम्भावना नहीं है। चरित्र गठनकेलिये वह प्रशंसा और अपमानको पसन्द करता है जिनसे बच्चोंके मनोंपर गहन प्रभाव पड़ता है। पर कमोनियसके समान लाक भी नैतिक अपराधों और नियम उल्लंघनकेलिये शारीरिक दण्ड देने को अच्छा मानता है। और शारीरिक दण्ड मानसिक त्रुटियोंकेलिये कदापि न देना चाहिए।

पाठकोंको ज्ञात होगया होगा कि लाककी शिक्षणपद्धतिमें विद्याको सबसे नीचा स्थान मिला है और बच्चोंकेलिये मानसिक शिक्षा कदापि नहीं रखी गई। बल्कि मानसिक शिक्षा उस अवस्थाकेलिये रखनी चाहिए जब एक मनुष्य अपनेको शिक्षित अपने आप कर सके। उन्हीं विषयोंकी शिक्षा देनी चाहिए जिनसे मानसिक शक्तियोंका विकास हो। इनके कहनेसे लाक उपयोगिता वादका खण्डन करता है।

लाक और उस जमानेके अध्यापकोंमें ज़मीन आसमानका अन्तर है। सचमुच वह मनुष्य एक दार्शनिक ही हो सकता है जब बच्चोंको पढ़ानेके समय वह उनके भविष्य जीवनपर विशेष ध्यान दे। उसको इस विचारसे सदा बाधित होना चाहिए कि उसके शिष्य भविष्यत्‌में किस प्रकारके होंगे, न कि उन्होंने निश्चित समयमें कितनी विद्योपार्जन की है और कितना वे जानते हैं। मगर आज कल परीक्षाओंके ज़मानेमें इस विचारका सफलीभूत होना बिल्कुल असम्भव है। सब शिक्षण

सुधारकोंसे लाकमें विशेषता यह है कि उसकी पद्धतिमें शिक्षाका केन्द्र मनुष्य माना गया है न कि ज्ञान पदार्थ, जैसा अनेक सुधारकोंने निरूपण किया है। इस बातमें लाककी कोई समानता नहीं कर सकता। उसने शिक्षाका अन्तिम और प्रथम उद्देश चरित्र-गठन कहा है।

रूसो।

फ्रांस देशकी स्थिति।

रूसोके जीवनचरित और उसकी शिक्षण पद्धतिको अच्छी भांति समझनेकेलिये उसके समयकी और उसके पूर्वकी फ्रांस देशकी स्थिति जान लेना आवश्यक है। फ्रांस देशकी स्थितिके ज्ञानसे आचरण और सिद्धान्तोंके ऊपर हम अपने विचार यथार्थ रूपमें निश्चित कर सकते हैं। रूसोका जीवन काल अठारहवीं शताब्दी है। युरोपमें अठारहवीं शताब्दी नये और विलक्षण विचारोंकी उत्पत्ति और उनकी चर्चाके लिये बहुत विख्यात है। इन विचारोंकी उत्तेजनासे उस समयके लोगोंमें खण्डनात्मक कार्योंकी ओर विशेष रुचि उत्पन्न हो गयी थी। ऐसी रुचिका उत्पन्न होना भी समयानुकूल था। यूरोप और खास कर फ्रान्स देशकी स्थिति बड़ी ही विचित्र थी। फ्रांस देशकी अवस्था बड़ी शोचनीय हो गयी थी। विद्वानोंका मत है कि इसी बिगड़ी हुई अवस्थाके कारण फ्रांसमें राज्यक्रान्ति हुई जो संसारके इतिहासमें एक बड़े महत्वकी घटना समझी जाती है। उस समय फ्रांसमें धर्म और नीतिका लोप सा हो गया था। नास्तिकता और व्यभिचारका वहां एक अखण्ड राज्य था। लोगोंकी प्रवृत्ति कुकर्मों की ओर अत्यन्त बढ़ गयी थी। उस समयके इतिहासके पढ़नेसे रोमाञ्च हो आता है और मनमें सहसा यही विचार आने लगता है कि क्या उस समय यहांके लोग पशु हो गये थे। ईश्वरका अस्तित्व पागलपनेकी बात समझी जाती थी। धर्म, पाप, पुण्य, और लोक परलोक की बातें गपोड़े समझे जाते थे। इन बातों

का कोई कर्ता धर्ता नहीं है। इनकी घटना जड़ पदार्थोंके संयोगसे होती है। इन्हीं भयङ्कर बातोंकी बदौलत मनुष्योंके आचरण भी बहुत भ्रष्ट हो गये थे। ऐसा मालूम होता है कि लोगोंने पातिव्रत्यधर्मका बहिष्कार कर दिया था। इसमे थोड़ीभी अत्युक्ति नहीं है। वहांके मनुष्य बड़े ही स्त्रीलम्पट हो गये थे और उनको इन कुकर्मोंके करनेमें तनिक भी लज्जा नहीं आती थी। वहां पर इन दुर्गुणोंका समर्थन खुलमखुला किया जाता था। बहुतसे ग्रन्थकारोंने इन दुर्गुणोंके प्रचारमें बहुत सहायता दी थी पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वहां पर कोई धर्मनिष्ठ मनुष्य थे ही नहीं। हाँ, काले काले बादलों से आच्छादित इस आकाश मण्डलमें कहीं कहीं विद्युतकी क्षण भङ्गुर चमक दिखलाई पड़ सकती थी। यह चमक घोर अन्धकारके हटानेमें नितान्त असमर्थ थी। ईश्वर ही ऐसे दुर्गुणोंसे रक्षा करे।

यूरोपके देशोंके इतिहाससे यह बात अच्छी तरह मालूम हो सकती है कि वहांपर हमेशा राजा और प्रजामें झगड़ा हुआ ही करता है। जिन प्रजासत्तात्मक प्रणालियोंको हम इस समय पाश्चात्य देशोंमें देखते हैं, वे बहुत वर्षोंके लगातार कार्योंके फल हैं। अठारहवीं शताब्दीमें व्यभिचारकी पराकाष्ठा-के साथ साथ फ्रांसमें किसानोंका दारिद्र्य भी बड़ा शोकजनक और व्यापी था। भूमिकर देनेके बाद उनके पास कुछ भी न बचता था जिससे वे अपना उदर निर्वाह कर सकते। उनको पेटभर भोजन मिलना बहुत ही दुष्कर हो गया था। राजा और उसके दरबारियों, रईस और उमरावोंकी बढ़ती हुई भोग विलासिताके कारण किसानोंकी अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो गई थी। वहांके राजा बड़ेही स्वेच्छाचारी होते

थे। उनकी स्वेच्छाचारिता और निरङ्कुशता युरोपमें प्रसिद्ध हैं। यहाके अमीर विलक्षण और अनियन्त्रित नियमोंके कारण किसानोंके ऊपर घोर अत्याचार करते थे। उनमें प्रारम्भिक शिक्षाका भी प्रचार न था। वे अपनी गिरी हुई दशाको समझते हुए भी कुछ न कर सकते थे। वे बिल्कुल असहाय और निरुपाय हो गये थे। अत्याचारोंसे पददलित इन किसानोंको बचाने वाला कोई नहीं था। इनसे वसूल किए हुए भूमिकर और अन्य प्रकारके महसूलोंको यहाँके उमराव और सरदार बीचमें ही खा जाया करते थे। सरकारी खजाने तक पहुचने का सौभाग्य इनको न प्राप्त होता था। इन बीचवाले शासकोंके अन्याय और अत्याचारकी कोई सीमा ही नहीं थी। इनके कारण क्या किसान, क्या और लोग सभी घोरतम कष्ट भोगते थे।

फ्रास देशकी बुरी दशाका यहीं अन्त नहीं होता। धर्माध्यक्ष और धर्मोपदेशक-गण भी इन्हीं दुर्गुणोंमें लिप्त थे। इनका मुख्य कार्य यह था कि सदुपदेशोंका प्रचार करके ईश्वरकी भक्ति लोगोंमें उत्पन्न करते पर इसके विपरीत ये स्वयम् घोर अनुचित और अशिष्ट कार्य करने लगे। जिन भजन मन्दिरोंमें ईश्वरोपासना और ईश्वरकी सर्व व्यापकता पर व्याख्यान और समापण होते थे, वे ही दुर्गुणोंके गढ़ हो गये। जो अत्याचार रोमन कैथलिकोंकी प्रेरणासे प्रोटस्टन्टों पर किये गये थे, वे जगद्विख्यात हो गये हैं। अठारहवीं शताब्दीमें हजारों निरपराधी प्रोटस्टन्टोंका वध किया गया था और उनके रक्तकी नदिया बहाई गयी थीं। एक ओर रोमन कैथालिकों और प्रोटेस्टेन्टोंमें घोर युद्ध चल रहा था और दूसरी ओर जन सख्याका अधिकाश अधर्मत्वकी सीमापर पहुच गया था। जिन लोगोंकी श्रद्धा धर्ममें थी उनको ये लोग

पागल समझते थे और धर्मोपदेशकोंकी निन्दा करनेको वे पुण्य समझते। नास्तिकताका बड़ा प्राबल्य हो गया था।

अठारहवीं शताब्दीमें जब फ्रांस देशकी ऐसी दशा थी तब वहां पर बड़े बड़े प्रसिद्ध ग्रन्थकार वाल्टेयर, डिडेरो आदि उत्पन्न हुए थे। इन्हीं ग्रन्थकारोंमें रूसो भी था। इन विद्वानोंके ग्रन्थोंकी ऐसी शैली है और इन्होंने अपने अपने विषयोंको ऐसी उत्तमतासे प्रतिपादित किया है कि थोड़े ही समयमें इनकी पुस्तकोंका सर्व साधारणमें बेहद प्रचार हो गया। इन पुस्तकोंसे लोगोंमें अशान्ति पैदा हो गयी। जब लोक समाज, राजनीति और धर्मोपदेशकोंकी दशा इतनी खोखली हो गई थी, तो ऐसे जीर्ण मकानके गिरा देनेकी अत्यन्य आवश्यकता थी। ऐसा कार्य करनेमें इन ग्रन्थकारोंकी पुस्तकोंने अग्निमें घृतका काम किया। उनमें रूसोका नाम सबसे ऊँचा है और खण्डनात्मक कार्यका सेहरा उसीके ऊपर डाला जायगा। इस खण्डनात्मक शक्तिका प्रादुर्भाव सबसे अधिक रूसोके ही लेखोंसे हुआ। ऐसा कहा जाता है कि इसीके लेखोंको पढ़नेके लिये यूरोपके बहुतसे निवासियोंने फ्रान्सीसी भाषाको सीखना आरम्भ कर दिया। रूसो बड़ा ही प्रभावशाली लेखक था और उसके लेखोंने फ्रांसकी काया पलट दी पर यह भी न भूल जाना चाहिए कि रूसोके लेखोंमें और पुस्तकोंमें परस्पर विरोधी बातोंका बाहुल्य है। तर्कना प्रणालीके सम्मुख उनमें सत्यका अंश बहुत ही कम रह जाता है। रूसोके लेखोंको पढ़कर मुंहमें अंगुली ही दबाते बनता है और उसके प्रति मनमें बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है पर उसके जीवन चरितकी मुख्य घटनाओंको पढ़कर वही बड़ा लेखक दो कौड़ीका मालूम होने लगता है। उसकी लेखनीकी प्रभावशालिनी शक्ति उसके भ्रष्टा-

चारके सामने मन्द पड़ जाती है। यदि उसके जीवनकी त्रुटियोंको दृष्टिमें न लावें तो सचमुच वह बड़ा स्वतन्त्र लेखक था। शिक्षाके इतिहासमें भी उसका बड़ा प्रभाव पड़ा, यहां तक कि कोई दूसरा शिक्षण सुधारक उसकी बराबरी नहीं कर सकता। सर्वजनहितैषी कमीनियस और दार्शनिक लाककी ख्याति भी इस पतित और नीच मनुष्यके लेखोंके सामने फीकी पड़ जाती है। उस समयकी स्थितिने ही रूसोको जगद्विख्यात बना दिया। समयकी स्थितिने ही उसको ऐसे विध्वंसकारी लेखोंके लिखनेमें उत्तेजित किया। कहा जाता है, और है भी ठीक, कि *"रूसो समयका प्रतिबिंब था"*।

रूसोका जीवन चरित

जां जाक् रूसोका जन्म एक उच्च परिवारमें स्विट्ज़रलैंडके जिनेवा शहरमें संवत् १७६६ में हुआ। उसका पिता फ्रांसकी राजधानी पैरिसके एक उच्च घरानेका था और घडीसाजीका काम करता था। उसका पिता रसिकता प्रेमी, विलासिता प्रिय, सनकी, और चपल स्वभावका था। ये गुण उसको पैरिसकी तात्कालिक समाज स्थितिकी बदौलत उसके पिता आदिसे मिले थे। रूसोकी माता एक धर्माध्यक्षकी पुत्री थी पर वह भी विकृत और रसीली *मिज़ाजकी थी। रूसोकी माताका प्राणान्त प्रसवके समय ही* होगया। बच्चेके पालन पोषण करनेका नाज़ुक काम एक बहुत ही मेहरबान धायको करना पड़ा, जिसका प्रभाव जो बहुत कुत्सित थी, बालक रूसोके ऊपर बहुत पड़ा। इस कृपालु धायने रूसोकी चोरी और झूठ बोलनेकी आदतोंको सुधारनेकी चेष्टा बिलकुल नहीं की, और न वह रूसोके अपरि-

पक्क मनमें नैतिक सिद्धान्तोंको ही अङ्कित कर सकी। उसका पिता भी मूर्ख और उग्र स्वभावका था और वह भी रूसोके सुधारनेमें विफल हुआ। अपने पिता और धायके ऐसे व्यवहारके कारण वह बहुत अक्खड़ होगया। वह आत्मनिग्रहसे बिल्कुल शून्य था। उसकी चित्तवृत्तियाँ बहुत ही अनियन्त्रित हो चलीं। रूसोका पिता लड़केकी तरफसे बिल्कुल बेपरवाह था। अपने मा बापके गुणोंका रूसो अनुरूप था। इससे रूसोकी भविष्यत जीवनकी मुख्य मुख्य घटनाओंका भेद स्पष्ट हो जाता है। छोटी उम्रमें उसको पढना लिखना सिखाया गया। जब उसकी उम्र केवल ६ वर्षकी थी तभी उसका पिता उसको शृङ्गार रससे परिपूर्ण और वाहियात अद्भुत कथाओं और उपन्यासोंको रात रातभर सुनाया करता था। ये पुस्तकें उसकी माताकी थीं। इससे बालकके ऊपर बहुत कुत्सित प्रभाव पड़े। उसकी कल्पना शक्ति बडी "तीव्र" होगयी। उसका मन विकारोंका जमघट होगया और पढ़नेका शौक़ अपूर्ण कालमेंही उसके मनमे परिपक्व होगया। बचपनमे उसको अद्भुत कथाओंकी पुस्तकों और उपन्यासोंके अवलोकन करनेकी बुरी लत पड़ गई जिससे उसकी चित्तवृत्तियोंका झुकाव रसिकत्वकी ओर बढ़ चला, यहां तक कि इन्हीं रसीले भावोंके कारण वह आचारमें पतित हो गया। इन्हीं पुस्तकोंसे उसके शृङ्गार रसके प्रेमका आरंभ होता है। लगभग एक वर्षमें जितने उपन्यास उसकी माताकी पुस्तक संग्रहमें थे वे सब उसने समाप्त कर डाले। पुस्तकावलोकनकी रुचिको पूर्ण करनेके लिये उसको अपने नाना, धर्मोपदेशकके अच्छे पुस्तकालयकी शरण लेनी पड़ी। यहांपर उसको पढ़नेका अच्छा मसाला मिला। उसने पुरातन यूनानके प्रसिद्ध

दस वर्षकी उम्रमें वह अपने नानाके परिवारमें रहने लगा। यहीं एक व्यापारका काम सीखना शुरू किया और वह अपने आत्मचरितमें लिखता है कि व्यापारकी शिक्षा प्राप्त करनेके समय मुझमें आलस्य, बेइमानी, धोखेबाजी और प्रामादिकता आदि दुर्गुणोंकी बुरी लतें आगई।

वह बुरे साथियोंकी कुसंगतिमें पड़ गया और अपनी इच्छानुसार बुरी वासनाओंको पूर्ण करने लगा। अन्तमें वह नगरसे भाग गया और अनेक वर्ष आवारापन, लम्पटता और तुच्छ दासत्वमें व्यतीत किये। इस कालमें भी सेवाय देशके दिव्य और रमणीक दृश्योंने उसके प्राकृतिक प्रेमको पुष्ट करते गये। एक परिवारमें नौकरकी हैसियतमें रहकर उसने थोड़ी बहुत मानसिक शिक्षा प्राप्तकी। १६ वर्षकी उम्रमें वह सेवाय नगरमें मैडम डी वारेन्सके साथ रहनेलगा। यह महिला बड़ी रूपवती पर दूषित आचरणकी थी। दस वर्ष इसी स्त्रीके साथ रह कर उसने कालक्षेप किया, पर साथही साथ उसको इस समयमें कुछ लैटिन, सगीत, दर्शनशास्त्र और कुछ अन्य विज्ञानोंके सिद्धान्तोंके अध्ययनका सुअवसर मिल गया। देश पर्यटनसे उसकी पूर्व सृष्टिसौन्दर्योपासना और भी दृढ़ हो गयी और वह पददलित और गरीब मनुष्योंसे सहानुभूति करने लगा। अन्ततः उसमें और मैडम डी वारेन्समें मनमुटाव हो गया। रूसो वहासे चला आया और पैरिसमें रहने लगा। यहा पर जीविकाकेलिए उसको अपने और थेरेस्मी लीवेसियर-के लिए अर्थोपार्जन करना पड़ा। थेरसो ली वैसियर एक मूर्खा और गवार नौकरानी थी। इसी स्त्रीके साथ उसने अपना शेष जीवन व्यतीत किया पर इससे उसमें जिम्मेदारीके कुछ भाव अवश्य उत्पन्न हुए। उसको अपने घरको सभालनेकी फिक्र

हो गयी और भिखमंगी और आवारापनकी आदतोंको छोड़ना पड़ा।

यद्यपि उसने भिखमंगेकी तरह दर दर घूमनेकी आदतको त्याग दिया था तौभी इस आदतके बहुत चिह्न उसके आचरणमें जीवन भर देखे जा सकते थे। उसमें मार्मिकता, स्वच्छन्दता, प्रकृति प्रेम और गरीबोंके प्रति सहानुभूति आदि गुणोंकी प्रचुरता थी। वेनिसलिलेयाकी शिक्षा से इन गुणोंमें कुछ भी अन्तर न पड़ सका। उस ज़मानेके प्रचलित भावों और अव्यक्त आकांक्षाओंने इन गुणोंके साथ मिलकर सोनेमें सुगन्धका काम किया। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, उन दिनों फ्रांस देशकी अवस्था बहुतही शोचनीय थी। राजा १५ वां लुई फ्रांसके सिंहासन पर आरूढ़ था। वह फ्रांस देशका नाम मात्रका बादशाह था। भोगविलासमें यह राजा अपने दिन व्यतीत करता था। वास्तवमें दरबारियोंका एक छोटासा मण्डल ही राज्यके कार्मोंका प्रबन्ध करता था। ये दरबारी ही राज्यके स्तम्भ थे। ये बड़े ही क्रूर, आलसी और फ़जूल खर्च थे। इनके अनियन्त्रित अधिकारोंसे और मनमानी करोंकी वसूल करनेसे प्रजा बड़ी हैरान होगयी थी। जिनलोगोंको जीवनमें उन्नति करनेके विचार पीड़ित करते थे वे जाकर इस दरबारी मण्डलमें सम्मिलित होजाते और इसके दिखाऊ और अगणित बुरी प्रथाओंको करने लगते। पन्द्रहवां लुई बड़ा ही व्यभिचारी था और दिन रात वह ऐश और आराममें चूर रहता था। उसके दरबारी भी उसके प्रतिबिम्ब थे। शिष्टाचारोंके बदले दिखाऊ आचारोंका अखण्ड साम्राज्य होगया। नित्य प्रति वहांकी प्रजा ऐसे कुकर्मियोंसे पिसी जा रही थी। करोंको देते देते उसकी नाकमें दम आगया था। पर धीरे धीरे इस

अत्याचार और अवनतिके विरुद्ध लोगोंमें विरोध करनेके विचार अङ्कुरित होने लगे और सादगीसे जीवन व्यतीत करनेके भाव उनके मनोंमें आने लगे। राजकर्मचारियोंकी स्वेच्छाचारिता, उद्दण्डता और दुर्गुणोंको लोग इस बनावटी सभ्यताके फल स्वरूप समझने लग गये। प्राकृतावस्थाको छोड़नेसे ही दुखोंका सामना करना पड़ता है—ऐसी धारणा लोगोंके मनोंमें धीरे धीरे प्रवेश करने लगी। बस क्या था, इस जोशीले, असंयमी और अर्द्धशिक्षित रूसोको ही अठारहवीं शताब्दीके विप्लवकारी और प्राकृत विचारोंको उत्तेजित और व्यक्त करनेका अवसर मिला।

उसके निबन्ध और पुस्तकें।

जीविका सम्बन्धी कार्य करनेके साथ साथ वह लेख लिखनेका भी थोड़ा बहुत अभ्यास करता रहा। १८०७ में एक विचित्र घटनाने उसको प्रसिद्ध कर दिया और वह उद्भट लेखक समझा जाने लगा। १८०४ विक्रमीमें डीजों नगरकी विद्यापीठने पारितोषिक लेखकेलिए यह विषय रक्खा—"विज्ञानों और कलाओंकी उन्नतिने क्या नीतिको दूषित या पवित्र किया है"। इस विषयको देखकर रूसोके मनमें जितने ये सिर पैर और ऊंट पटांगके विचार चक्कर खा रहे थे उनको प्रकाशित करनेकी उत्तेजना उसको मिली। बड़े जोश और दृढ़ विश्वासके साथ उसने इस विषयके ऊपर अपना कूट निबन्ध लिखना आरम्भ कर दिया। इस लेखमें उसने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रचलित अत्याचार और समाजकी भ्रष्टताके कारण सभ्यताकी उन्नति है। उसने इस लेखमें वन्यावस्थाकी प्रधानता स्वीकार की है। इसमें संसारके इतिहासके ज्वलन्त प्रमाणोंसे वह इस बातको

सिद्ध करनेकी चेष्टा करता है कि विज्ञानों और कलाओंकी उन्नति ही समाजकी इस पतितावस्थाका कारण है। लोगोंको अज्ञानताकी सुखद अवस्थामें लौट जानेका प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि प्रकृतिने मनुष्योंको इसी अज्ञानताकी अवस्थामें रहनेके लिये बनाया है। रूसोने पारितोषिक पाया और उसके इस लेखने फ्रांस देशमें हलचल मचा दिया। इस लेखमें वह लिखता है कि जंगली अवस्थामें मनुष्योंके अन्दर शारीरिक और मानसिक असमानता नहीं पायी जाती है पर सभ्यताके विकासके साथ साथ इस समानतामें बट्टा लगने लगा और मनुष्योंमें हजारों भेद उत्पन्न हो गये। निजी मलकियतके भाव ही इस असमानताके जिम्मेदार हैं और ज्यों ज्यों सामाजिक नियमोंके बन्धन बढ़ने लगे त्यों त्यों लोगोंमें निर्धनता और दासत्व आने लगे और धनवान मनुष्योंमें एक विशेष शक्ति आ गयी। ये बातें बहुत अनिष्टकारिणी हैं। इस लिये ये विध्वंस करनेके योग्य हैं।

सं० १८०१ में उसने असमानताकी उत्पत्तिके ऊपर एक लेख लिखा। सं० १८१३ में वह मान्टमारेन्सी गांवमें रहने लगा क्योंकि पैरिसकी दिखाऊ समाजके प्रति उसके मनमें घोर घृणा पैदा हो गयी थी। यहीं पर उसने "ला नुवेल हेल्या" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। सं०१८७६ में उसने राजनीति शास्त्र. के ऊपर अपनी विख्यात पुस्तक "सामाजिक समझौता" (कोंत्रा सोसिआल) को निकाला। इसी वर्ष उसने "एमली" नामक ग्रन्थ भी प्रकाशित किया जिसमें शिक्षा विषयक बड़े विप्लवकारी विचारोंका समावेश था। इन सब पुस्तकोंमें वह एक ही स्वरको अलापता है। इन सब पुस्तकोंमें वह प्रकृतिकी ही दुहाई देता है। वह प्राकृतिक अवस्था और नियमोंका बड़ा ही क़ायल है। उठते बैठते वह वन्यावस्थाके स्वप्न देखता है। ये

पुस्तकें राज्य और नीति शास्त्रके विरुद्ध समझी गयी। इस लिये वह फ्रांस राज्य और जिनेवाकी पञ्च सभासे बहुत तंग किया गया। उसकी पुस्तकें आगमें जला दी गयीं और उसके ऊपर रोष प्रकट किया गया। सं० १८२३ में रूसोने इंगलैंडकी यात्रा की, जहाँ पर उसने "आत्म स्वीकोशक्ति" नामक पुस्तक लिखी। १८२७ में वह फिर पैरिस लौट आया और संवत् १८३५ में उसका देहावसान हो गया।

प्राकृतावस्थाका सिद्धान्त।

रूसोकी नैसर्गिक शिक्षण पद्धति और विप्लवकारी राजनैतिक विचारोंकी विवेचनाके लिए उसका प्राकृतावस्थाका सिद्धान्त जान लेना आवश्यक है। उसकी विचार-शृङ्खला इसी सिद्धान्तपर अवलम्बित है। पैरिस समाजमें कृत्रिमता, बनावटीपन, सहानुभूतिका अभाव और स्वार्थपरायणता आदि दुर्व्यसनोंका अखण्ड राज्य था। इस सामाजिक शुष्क जीवनसे रूसोको अत्यन्त घृणा हो गई। इसको नष्ट करनेके लिए और रामराज्य स्थापित करनेके लिए उसने प्राकृतावस्थाकी प्रधानताकी घोषणा की। उसने वन्यावस्थाकोही पूज्य स्वीकार किया। उसने जंङ्गली मनुष्यको अच्छा बताया है। इसीकी प्रशंसामें स्तोत्र उसने लिखे हैं। इस प्राकृतवस्थामें सब मनुष्य सीधे सादे, सन्तुष्ट, ईमानदार और परिश्रमी होते हैं। उसकी युक्तिका सारांश यह है कि सभ्यताने मनुष्य जातिको भ्रष्ट कर दिया है। मनुष्य एक समय खुश था पर अब वह दुर्दशाग्रस्त है। इस दुर्दशाको लानेकेलिए मनुष्यने जितने काम किये हैं उनको विध्वंस कर डालनेसे मनुष्य फिर खुश हो जायगा। यही उसकी प्राकृतावस्थाके सिद्धान्तका आशय

है। सामाजिक समझौताकी पुस्तकका पहिला वाक्य यह है कि "मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है पर वास्तमें हर एक जगह वह बेड़ियोंसे बन्धा हुआ है।" शिक्षा विषयक 'एमली' पुस्तक इन्हीं वाक्योंसे आरम्भकी जाती है कि "प्रकृति देवीकी दी हुई सब वस्तुये' अच्छी होती हैं लेकिन वही वस्तुएं मनुष्यों-के हाथोंमें आकर दूषित हो जाती हैं।" प्राकृतावस्थाका यही निचोड़ है। यह स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त केवल सत्याभास है। इसमें सत्यांश बहुत कम है। लेकिन अठारहवीं शताब्दीमें यूरोप-की ऐसी शोचनीय अवस्था हो गयी थी कि वहांकी समाजको इसी सत्याभासकी बड़ी आवश्यकता थी। गरीबोंके साथ उस-की बड़ी हमदर्दी थी और उनकी दशा सुधारनेके स्वप्न वह दिन रात देखा करता था। यूरोपकी उच्च श्रेणीके मनुष्य, रईस और उमराव ग़रीबोंके प्रति उदासीन भाव रखते थे। गरीबोंकी दशा सुधारनेमें ऐसे मनुष्योंका रहना रूसो बाधक समझता था। वह उस समयकी सामाजिक व्यवस्थाको विध्वंस कर देना ही अच्छा समझता था। वह उस समयकी सामाजिक व्यवस्थाको बिलकुल खण्डनीय ख़याल करता था। उसने वहांकी प्रचलित सामाजिक प्रथाओंके ऊपर निर्दयता पूर्वक आघात करना आरम्भ कर दिया, उसकी प्रकृतिमें अपरिमित श्रद्धा थी। उसका विश्वास था कि सब मनुष्य अच्छे हैं और उनको अपने हित साधनके लिये अवसर मिलना चाहिए क्योंकि उनमें शक्तियां वर्त्तमान हैं। रूसोके सब सिद्धान्तोंका सिद्धान्त यह था कि मनुष्यको पूर्ण स्वाधीनता मिलनी चाहिए। स्वा-धीनता ही उसकी उपास्या देवी थी। इसी देवीके प्रसादको वह सर्वसाधारण मनुष्योंमें वितरण करना चाहता था। जिस प्रकार रूसो मनुष्योंको दासत्वसे मुक्त करने का समर्थक

था, उसी प्रकार वह शिक्षामें भी बच्चोंको सब प्रकारके प्रतिबन्धोंसे मुक्त करना चाहता था। शिक्षामें वह बच्चोंको स्वाधीन चेता बनाना चाहता था। जिस प्रकार रूसोने सब मनुष्योंकी स्वतन्त्रताकी घोषणा अपनी पुस्तक सामाजिक नियममें की है, उसी प्रकार जितने वर्तमान शिक्षा विषयक विचार निरूपित किये गये हैं, उन सबके अङ्कुर रूसोकी पुस्तक एमिलीमें पाये जाते हैं। शिक्षामें उसके विध्वंसकारी उपदेशोंका बहुत प्रभाव पड़ा है। उसकी उद्दण्डताके असर प्रचलित शिक्षा पद्धतियों-के ऊपर खूब पड़े हैं।

एमिलीका आशय।

जिस पुस्तकने रूसोको इतना विख्यात कर दिया है और जिससे हमारा विशेष मतलब है, वह पुस्तक एमिली है। इस पुस्तकमें उस समयकी प्रचलित शिक्षा-प्रणालीके दोषोंकी तीव्र आलोचना रूसोने की है। उस समयके मदरसोंके लड़कों और लड़कियोंमें बेहद शौक़ीनी फैली हुई थी। लड़कोंकी शिक्षाकी इति श्री बालोंका सवारना और ठीक तौरपर वस्त्र पहिननाही समझी जाती थी। लड़कियोंको केवल पहिनना और नाचना ही सिखाये जाते थे क्योंकि ये ही बातें उनके भविष्य जीवनमें बड़े महत्वकी होंगी। लैटिन व्याकरणके रूपोंको याद करके ही लड़के शिक्षित हो जाते थे। केवल उनकी स्मरणशक्तिके ऊपर ध्यान दिया जाता था। इन प्रथाओंका खण्डन रूसोने एमिलीमें बलपूर्वक किया और सुधारकी आवश्यकता दर्शायी। इस पुस्तकमें रूसो-ने एमिली नामक एक काल्पनिक विद्यार्थीकी शिक्षाके ऊपर अपने प्राकृतिक सिद्धान्तोंको घटाया है। इसमें रूसोने जन्म-

से लेकर उस समय तक की जब मनुष्यको दूसरेकी सहायताकी उपेक्षा नहीं रहती है, शिक्षा-क्रमको इसी विद्यार्थीके विषयमें लिखा है। समाज और मा बापसे पृथक करके एकान्तमें एक आदर्श गुरूकी अध्यक्षता और निरीक्षणमें एमिलीकी शिक्षाका प्रबन्ध किया जाता है। सृष्टिके सुन्दर नियमों और अनुपम दृश्योंके संसर्गमें उनको रहना पड़ता है।

जिन सिद्धान्तोंका उल्लेख रूसोने एमिलीमें किया है, उनका वर्णन नीचे किया जाता है—

(क) हमारी शिक्षाके तीन उद्गम हैं अर्थात् हमको प्रकृति, मनुष्य और पदार्थों द्वारा शिक्षा मिलती है। जो शिक्षा हमको मनुष्य और पदार्थों द्वारा मिलती है, उसके ऊपर हमारा बहुत अधिक अधिकार है। पर तीसरे प्रकारकी शिक्षा के ऊपर जिससे हमारी शक्तियोंका अन्दरूनी विकास होता है और जिसका प्रबन्ध प्रकृतिही करती है, हमारा वश कुछ भी नहीं है। इस लिए इन दो प्रकारकी शिक्षाओंको तीसरेकी सफलताके लिए प्रेरित करना चाहिए। मनुष्य और पदार्थों द्वारा प्राप्त की हुई शिक्षाको प्रकृतिकी शिक्षाके अनुकूल बनाना चाहिए। शिक्षामें इसी अविरोधको लक्ष्यमें रखना चाहिए।

(ख) आदतोंके विषयमें रूसोकी यह सम्मति है कि बच्चोंमें किसी प्रकारकी आदतें न आने देना चाहिए—बच्चोंमें इसी आदतको अङ्कुरित करना चाहिए। आदतोंसे अभिप्राय दूसरे मनुष्योंका अनुकरण करना ही है। इन आदतोंसे मनुष्यकी मूल वृत्तियोंका मतलब नहीं है। जो वृत्तियां हमको प्रकृतिसे मिलती हैं उनकी गणना रूसोने इन आदतोंमें नहीं किया है।

(ग) मनुष्य स्वभावसे अच्छा है इसलिए शिक्षाका मुख्य कार्य उन सब वस्तुओंको हटानाही है जिनसे मानवी प्रकृतिके विकासमें बाधाएँ आती हों। अतः शिक्षा केवल निषेधात्मक ही होनी चाहिए। इस निषेधात्मक शिक्षामें धर्म या सत्यताके सिद्धान्तोंके ऊपर जोर नहीं दिया जाता पर हृदयको पाप और मनको भ्रमसे बचानेका पूर्ण प्रयत्न करनाही कर्तव्य होना चाहिए। शारीरिक शिक्षामें जब यह निषेधात्मक-शिक्षाका सिद्धान्त घटाया जाता है, तब इसकी बदौलत बच्चेको बडी स्वतंत्रता मिलती है। इसके अनुसार बच्चेको बहुत सादा भोजन और वस्त्र देने चाहिए। खुली हवामें ग्रामीण जीवनही प्रशस्त बतलाया गया है, जिसमें बच्चेकी शारीरिक उन्नतिमें किसी प्रकारके कृत्रिम प्रभाव न पड़ सकें। मानसिक शक्तियोंके विकासमें इस निषेधात्मक या प्राकृतिक शिक्षाका मतलब रूसोने यही बतलाया है कि १२ वर्षकी उम्रतक बच्चे की इस शिक्षाके ऊपर बहुत ही कम ध्यान देना चाहिए। मानसिक शिक्षाके विषयमें उसकी यह धारणा है कि इस उम्रतक बच्चेकी तर्कना बुद्धि जागृत नहीं रहती है।

नैतिक शिक्षामेंभी इस सिद्धान्तका समर्थन रूसोने किया है। इस निषेधात्मक और प्राकृतिक शिक्षाको सफलीभूत करनेकेलिए प्राकृतिक परिणाम भोगवाली नीतिके व्यवहारकी अत्यन्त आवश्यकता है। बच्चोंको मनमाने काम करनेसे ज़बरदस्ती कभी न रोकना चाहिए। उनको अपने किये हुए कामोंके परिणामोंके फलोंको भोगना चाहिए। इन कामोंमें मनुष्यको स्वभावतः अवश्य या स्वच्छन्द भय न उपस्थित करना चाहिए। रूसोने यह भी लिखा है कि शिक्ष-

कको बच्चोंके सुधारके लिए भी सावधान होना चाहिए पर शिक्षकको यह बात बच्चेको भली भांति समझा देना चाहिए कि जो कुछ दण्ड बच्चेको भोगने पड़ते हैं वे उसके किये हुए कामोंके प्राकृतिक परिणाम हैं। बच्चोंको किसी प्रकारके कामोंको सम्पादन करनेकी प्रतिबन्धकता न होनी चाहिए। यदि एक बच्चा खिड़कीके शीशोंको तोड़ डाले तो उसको सरदीसे बचानेकी चेष्टा न करनी चाहिए चाहे उसको जोकाम हो जाय। यदि एक बच्चा अधिक मात्रामें भोजन खालेवे तो उसको रोग ग्रस्त होने दो। मतलब यह कि बच्चेकी किसी कार्यका विरोध न करना चाहिए पर उसके अपराधों या गलतियोंके प्राकृतिक परिणाम भोगवाली युक्ति काममें लानी चाहिए।

इस प्राकृतिक परिणाम भोगवाली नीतिका दायरा बहुत तंग है। अनेकों ऐसे प्रसङ्ग उपस्थित होंगे जहांपर इसका प्रयोग नहीं किया जा सकेगा। रूसोने स्वयम् लिखा है कि १२ वर्षकी उम्र तक बच्चे तर्कना-बुद्धिसे काम लेनेमें असमर्थ हैं। वे कार्य कारणका सम्बन्ध नहीं जान सकेंगे, इसलिये इस अवस्थामें उनकी नैतिक शिक्षाकी सम्भावना नहीं की जा सकती। यह इस नीतिका पहिला दोष है।

दूसरा दोष यह है कि बच्चोंको दूसरे मनुष्योंके अनुभवसे बञ्चित रहना पड़ेगा। उनको हज़ारों वर्षके प्राप्त किये मानवीज्ञानसे कुछ लाभ न मिलेगा। इससे उनका समय बहुत बरबाद जायगा।

तीसरा दोष यह है कि इस नीतिमें दूसरे प्राणियोंके सुख दुःखकी कुछ भी परवाह नहीं की गई है। हमको दूसरे प्राणियोंके सुख दुःखकी भी चिन्ता रखनी चाहिए। इस दोषको

स्पष्ट करनेकेलिये निम्नलिखित दृष्टान्त दिये जाते हैं।

यदि एक लड़का कुत्तेकी पूंछ पकड़कर उसको क्लेश देगा तो कुत्ता लड़केको अवश्य काट खायगा। कुत्तेके काटनेसे लड़केको प्राकृतिक परिणामकी शिक्षा मिलेगी और भविष्यत्में वह कभी कुत्तेको दुःख न देगा। पर इसके विपरीत यदि एक लड़का एक कबूतरको पकड़कर उसकी गरदन मरोड़ देवे और यदि हम लड़केको ऐसा काम करनेसे न रोकें, तो वह कबूतर मर जायगा और वह उस लड़केको किसी प्रकारका फल न दे सकेगा। यहांपर प्राकृतिक परिणामका प्रयोग नहीं हो सकता। इसका सार्वत्रिक प्रयोग नहीं किया जा सकता।

चौथा दोष यह है कि अनेक ऐसे प्रसङ्ग आवेंगे जिनमें यदि बालकको उपदेश नहीं दिया जावेगा तो उसके शरीरपर बड़ी चोट आजावेगी और हमेशाकेलिये उसके अङ्ग बेकाम हो जावेंगे। मान लो कि एक बालक घरकी छतपर है। यदि उसको रोका नहीं जावेगा तो वह अवश्य छतसे फर्शपर गिरकर अपने सिर, हाथ या पैरको तोड़ डालेगा।

शिक्षाके क्रम।

रूसोने 'एमिली' पुस्तकको पाँच भागोंमें विभक्त किया है। चार भागोंमें शैशवावस्थासे लेकर यौवनावस्था तक बालक एमिलीकी शिक्षाका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और पांचवें भागमें एक कुमारीकी शिक्षाका उल्लेख है जो आगे चलकर एमिलीके साथ ब्याही जाती है।

(१) शिक्षाका पहिला क्रम एक वर्षसे पाँच वर्ष तक है। इस अवस्थामें पिता ही बच्चेका सच्चा शिक्षक होता है और माता उसकी सच्ची दाई होती है। बच्चेको किसी प्रकारके

बन्धनमें न रखना चाहिए और उसको कमरेमें इधर उधर चलने देना चाहिए। उसके शरीरको किसी प्रकारके वस्त्रमें न ढकना चाहिए और न उसको जूता पहिनना ही आवश्यक है। उसको ठण्ढे जलमें नहलानेकी सम्मति रूसो देता है। इस अवस्थामें बच्चा बहुत ही चपल होता है। वह प्रत्येक वस्तुको स्पर्श करना और उठाना चाहता है। उसको ऐसे कामोंके करनेमें रोकना न चाहिए। वह इन्हीं अनुभवोंसे पदार्थोंकी गर्मी या सरदी, कठोरता, मुलायमपन, बोझ, गुरुता और हलकापनके ज्ञानको प्राप्त करता है। पदार्थोंके आकार, क़द और दूसरे इन्द्रियज्ञेय गुणोंको यथार्थ रूपमें जाननेकी शिक्षा, निरीक्षण, स्पर्श तथा श्रवणद्वारा आरम्भ होती है। वह देखी हुई वस्तुको छूना चाहता है। इस तरह वह दृष्टि और स्पर्शका मिलान करता है। छोटे बच्चोंकी प्रारम्भिक शिक्षाके विषयमें चार बातोंका ख़याल रखना चाहिए।

(क) बच्चोंको प्रत्येक वस्तुका उपयोग करनेमें किसी प्रकारकी रुकावट न डालनी चाहिए जब यह मालूम हो जाय कि उस वस्तुसे वे कोई अनिष्ट काम न कर सकेंगे।

(ख) सब शारीरिक चेष्टाओंमें हमको उनकी शारीरिक शक्तिकी क्षति पूर्ण करने तथा तत्सम्बन्धी ज्ञानकी वृद्धिमें योग देना चाहिए।

(ग) पर इसके साथ साथ हमको उनकी वास्तविक प्राकृतिक और काल्पनिक आवश्यकताओंको समझनेकी चेष्टा करके उनमें अन्तर करना चाहिए। हमको उनकी मूर्खता-पूर्ण प्रार्थनाओं और हँसी मज़ाकोंपर ध्यान न देना चाहिए।

(घ) हमको बच्चोंकी बोली और इशारोंका ध्यान पूर्वक निरीक्षण करना चाहिए क्योंकि इस छोटी उम्रमें जब वे सच्चे

भावोंको छिपा नहीं सकते हैं, तब यह भली भांति समझ सकते हैं कि उनकी कौनसी इच्छाओंको प्रकृतिने प्रेरित किया है और कौनसी इच्छाओंको कल्पनाने पैदा किया है। उनके मानसिक और नैतिक विकासके ऊपर बहुत ही कम ध्यान देना योग्य है। जहां तक सम्भव हो, उनको थोड़े ही शब्द बतलाने चाहिए और उनके शब्दसंग्रहको रोकनेके उपाय भी करना अच्छा है। यदि उनको विचारोंकी अपेक्षा अधिक शब्दोंका ज्ञान हो जायगा, तो उनको फायदा होनेकी आशा नहीं है। यदि वे बहुत विचारों और पदार्थोंके ऊपर खूब बातें कर सकें पर उनका मनन यथार्थ रूपमें वे न कर सकें, तो भी उनको हानि ही है। छोटे बच्चोंको किसी प्रकारके बनाये हुए खिलौने न देने चाहिए पर फलों और फूलोंसे लदी हुई पेड़ोंकी शाखायें, जो स्वाभाविक पैदावार हैं, देनी चाहिए।

ऊपर लिखी हुई बातोंको पढ़कर हमको मालूम हो जायगा कि इस अवस्थामें बच्चोंकी शिक्षा केवल शारीरिक ही है। इस अवस्थाकी शिक्षाका मुख्य अभिप्राय उनके स्वभावों और चित्तवृत्तियोंको अवगुणों और उसकी बुद्धिको गलतीसे सुरक्षित करना है क्योंकि रूसोके मन्तव्योंके अनुसार बच्चोंके स्वभाव और वृत्तियाँ अच्छी होती हैं।

(२) शिक्षाका दूसरा क्रम ५ वर्ष से १२ वर्षतक रहता है। जैसा ऊपर पहिले क्रमके विषयमें लिखा जा चुका है, इसमें भी शिक्षा केवल निषेधात्मक होनी चाहिए और नैतिक शिक्षाको प्राकृतिक परिणामके ऊपर अवलम्बित करना चाहिए, या यों कहना चाहिए कि इस अवस्थामें बच्चोंको नैतिक शिक्षा देनी ही नहीं चाहिए क्योंकि उनको इस अवस्थामें

पाप पुण्य और भले बुरेका ज्ञान नहीं हो सकता। रूसोकी सम्मति है कि इस अवस्थामें याद किए हुए शब्दसंग्रहमेंसे 'आज्ञा पालन और आज्ञा देना'—इन दो शब्दोंको स्थान न मिलना चाहिए। 'कर्त्तव्य' और 'कृतज्ञता' शब्दोंका वहिष्कार करनेकी सलाह रूसोने दी है। उस समयकीप्रचलित शिक्षा प्रणालीका घोर विरोध रूसोने इस प्रसङ्गमें किया है। मानसिक शिक्षाके विषयमें रूसोकी यह राय है कि बच्चोंके मनोंमें सब प्रकारके विचारोंको ज़बरदस्ती ठूंसनेकी कोशिश न करना चाहिए, क्योंकि बच्चे बच्चे ही हैं और 'प्रकृति स्वयम् चाहती है कि बच्चोंको बच्चोंके ही काम करना चाहिए जब तक वे आदमी नहीं हो जाते'। रूसो लिखता है कि बच्चोंके शरीर, इन्द्रियों और अवयवोंसे खूब काम लो या जहाँ तक हो सके, आत्माके ऊपर कम ज़ोर डालना चाहिए। बच्चोंको इस समय भूगोल, इतिहास या भाषाओंको पढ़नेका निषेध रूसोने किया है और न उनको शिक्षाप्रद कहानियोंको ही कण्ठाग्र करना चाहिए। यहाँ तक रूसो बढ़ गया है कि वह इस अवस्थामें बच्चोंको पुस्तकें छूने तककी आज्ञा नहीं देता है। इस अवस्थामें इन्द्रियोंकी शिक्षा होनी चाहिए। बच्चोंको ऐसी वस्तुओंकी शिक्षा देनी चाहिए जिनको बच्चोंकी बुद्धि ग्रहण कर सके अर्थात् बच्चोंको ऐसी वस्तुएँ बतलानी चाहिए जिनका ज्ञान उनको इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त हो सकता है। इसी शिक्षाका स्वरूप पदार्थपाठ होना ही अच्छा है। शिक्षाके इस उद्देशको पूर्ण करनेकेलिये चित्रकला, ज्यामिति, वाक्पटुता, व्याख्यान देनेकी विद्या और सगीत सिखलानेकी आवश्यकता है। महानुभाव लाककी भाँति रूसो भी बच्चोंमें 'तापस वृत्ति' पैदा करनेका पक्षपाती है। वह लिखता है कि बच्चोंको थोड़े

ही वस्त्र पहिनाना चाहिए। उनको सर्दी और गर्मीके प्रभावोंसे बचाना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा करनेसे उनमें दुःखों और क्लेशोंको सहन करनेकी क्षमता उत्पन्न होगी जिनसे उनको अपने भविष्य जीवनमें अनेक फायदे होंगे। बच्चोंकी शय्या कड़ी होनी चाहिए और उनको खूब सोना चाहिए।

(३) शिक्षाका तीसरा क्रम १२ वर्ष से १५ वर्ष तक रहता है। यह अवस्था वास्तविक कार्यकेलिये है। इस गम्भीर कार्यकेलिये प्रकृतिने बच्चोंको शक्ति पहिलेसे ही दे दी है। यह अवस्था परिश्रम, शिक्षण और अध्ययनकेलिये है। अब समयके एक क्षणको भी बरबाद न जाने देना चाहिए, पर हमारे व्यावहारिक ज्ञान-शून्य ग्रन्थकारको इतना अमूल्य समय खो देनेकेलिये कुछ भी चिन्ता और पश्चात्ताप तक नहीं। रूसोने इस बातको स्वीकार भी किया है कि तीन वर्षके थोड़े समयमें बहुत कुछ नहीं सीखा जा सकता है और इसलिये वह ऐसे विषयोंकी शिक्षा अच्छी समझता है जो बच्चोंकेलिये लाभकारी हों। सब पाठ्य विषयोंके सारासारका ख्याल कर विज्ञान शिक्षाको ही रूसो यथार्थ समझता है। बच्चोंको विज्ञान, ज्यामिति, ज्योतिषशास्त्र, भूगोल और भौतिकशास्त्र ही सीखना चाहिए। इन विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेकेलिये बच्चोंमें जिज्ञासा वृत्ति उत्पन्न करनी चाहिए और अन्वेषण करनेके शौकको उत्तेजित करना ही लाभदायक होता है। ज्ञान प्राप्त करनेका यही स्वाभाविक तरीका है। इस प्रकारके तरीकेमें इन्द्रियां ही बच्चेकी पथप्रदर्शक होनी चाहिए। उन्हींकेद्वारा उसको वास्तविक शिक्षा मिल सकती है। इस तरीकेके सार्थक्यकेलिये लड़कोंसे ऐसे प्रश्नोत्तर पूछने चाहिए जो उसकी समझके बाहर नहीं हैं। इन

किये गये प्रश्नोंके उत्तर देनेमें लड़कोंको सहायता न करनी चाहिए। उनको कोई बातें न बतलानी चाहिए। यदि इस तरह उनको पूछी हुई बातोंका ज्ञान हो जाय, तो ऐसा ज्ञान उन्होंने अपने आप प्राप्त किया है न कि तुम्हारे बतलानेपर। इस ज्ञानके उपलब्ध करनेमें लड़कोंने स्वयम् कोशिश की है। यह उनकी कोशिशका फल है। इसका यश उन्हींको मिलना चाहिए। लड़कोंमें प्रामाणिकताका विचार न आने देना चाहिए अन्यथा वे तर्क करना नहीं सीख सकेंगे। आकाशको गौरसे देखकर एमिली ज्योतिषशास्त्रकी शिक्षाको ग्रहण करता है। भूगोलकी शिक्षा नकशोंद्वारा न होनी चाहिए पर जिस स्थानपर बालक रहते हैं, उसीके आस पास तालाब, भील, पहाड़, मकान आदिके देखनेका अवसर बालकोंको मिलना चाहिए। इस प्रकारकी भूगोल शिक्षाका उदाहरण 'एमिली' पुस्तकमें मिलता है। एमिली और उसका शिक्षक दोपहरके समय एक घने जंगलमें रास्ता भूल जाते हैं। इस समय एमिलीको भूख भी खूब लगी है पर घर पहुंचनेका ठीक ठीक रास्ता मालूम करनेका भार भी उसीके ऊपर है। शिक्षक एमिलीके साथ साथ चलाजाता है और एमिलीको ही घर आनेका रास्ता ढूंढना पड़ता है। रूसोकी राय है कि इस तरीकेके अवलम्बसे जो भूगोलकी शिक्षा बालकोंको मिल सकती है, वह शिक्षा उनको पुस्तकोंद्वारा कदापि नहीं मिल सकती। इसी प्रकार विज्ञानकी शिक्षा भी केवल प्रयोगात्मक होनी चाहिए। बालकोंको अपने किये और देखे हुए अनुभवों-द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। ऐसी वैज्ञानिक शिक्षा बहुत उपयोगिनी होती है। रूसोको पुस्तकोंसे बड़ी घृणा है। वह पुस्तकोंको निरर्थक समझता है। हां, वह एक

पुस्तक 'राबिन्सन क्रूसो'के पढ़नेका परामर्श देता है क्योंकि इस पुस्तकावलोकनसे परिश्रम और उद्योग-धन्धोंकी उत्कृष्टता बालक समझने लगेंगे और हाथसे परिश्रम करना वे अपमान सूचक नहीं ख्याल करेंगे। इस अवस्थामें एमिलीको किसी व्यवसायकी भी शिक्षा दी जाती है, खास करके उसको बढ़ईगीरी सिखलाई जाती है जिसमें वह आपत्ति और राज्यक्रान्तिके समयमें जीविका निर्वाह कर सके। इस शिक्षा क्रमकेलिये रूसोने जिन शिक्षण मन्तव्योंका निरूपण किया है उनके प्रधान लक्षण ये हैं—

(क) अब भाषा या साहित्य सम्बन्धी शिक्षण न होना चाहिए।

(ख) गणित और विज्ञान पाठ्य विषय होने चाहिए।

(ग) लड़कोंको अपनी बुद्धिकी उन्नति करनेकेलिये उत्साहित करना चाहिए अर्थात् लड़कोंके शिक्षित करनेमें आत्मशिक्षणके तरीकेका अवलम्ब करना योग्य है।

(घ) बच्चोंको हाथोंसे परिश्रम करनेकी शिक्षा मिलनी चाहिए जिसमें उनके मानसिक ज्ञानकी उन्नति भी हो और उनको परिश्रमका गौरव भी मालूम हो जाय।

(४) १५ वर्षसे २० वर्ष तककी शिक्षाका क्रम। २० वर्ष तक एमिलीने अपनी शिक्षाका प्रबन्ध अपने आप किया है। इसमें उसने किसीकी सहायताकी उपेक्षा नहीं की और निरन्तर अपनी आत्मशिक्षणकी चिन्तामें लगा रहा। आत्मशिक्षण और अन्वेषणोत्सुकता ही उसकी चित्तवृत्तियोंको प्रेरित करती रहीं और ज्ञानकी पूर्ण प्राप्ति ही उसका उद्देश था। किस प्रकार दूसरे मनुष्योंके साथ व्यवहार करना चाहिए और किस प्रकार सामाजिक सम्बन्धोंको ठीक तौरपर निबाहना

चाहिए उसको इसकी शिक्षा मिलना आवश्यक है। उसको संसारमें मनुष्योंके बीच में रहना है, इसलिये दूसरोंकी हिताहित या सुख दुःखकी बातों पर ध्यान देना योग्य है। दूसरोंके लिये प्रेमको दृष्टिमें रखकर इस नवयुवकको सब काम करने चाहिए। यही भाव उसको काम करनेकी प्रेरणा देता है और उसका उद्देश नैतिक उन्नति है। यह अवस्था उसको नैतिक शिक्षाके लिये है। उसको सहृदय, नीतिवान और धार्मिक बनाना है। रूसो लिखता है कि 'हमने उसकी बुद्धि, इन्द्रियों और शरीरकी शिक्षाका प्रबन्ध कर दिया है और अब उसको हृदय देना बाकी रह गया है अर्थात् उसकी नैतिक शिक्षाका प्रबन्ध करना शेष रह गया है'। रूसोके लेखानुसार यह अवस्था बड़ी नाज़ुक होती है। इस अवस्थामें नवयुवकका दूसरा जन्म होता है। इस अवस्थामें किये हुए कामों का फल उसको जन्मभर भुगतना पड़ता है और सब मानवी बातें उसके हृदयङ्गम हो जाती हैं अर्थात् मानवी शरीरसम्बन्धिनी कोई ऐसी बात नहीं रह जाती जो उससे छिपी हो। यद्यपि साधारण शिक्षाकी समाप्ति यहांपर हो जाती है तो भी सच्ची शिक्षाका आरम्भ यहींसे होता है।

एमिलीको दूसरे मनुष्योंके उपकार करनेकी शिक्षा भी मिलनी चाहिए। उपकारके भाव उसके मनमें आने चाहिए। इस नैतिक शिक्षणमें केवल नीतिशास्त्रके ऊपर व्याख्यान दे, या पाप पुण्यकी शब्दोंद्वारा आलोचना कर देनेसे चुप न हो जाना चाहिए पर पुण्य या उपकारके अभ्यासके ऊपर इस शिक्षाको निर्धारित करना चाहिए। रूसो लिखता है कि 'नेकी करनेसे ही मनुष्य नेक बन सकता है'। इस अभ्यासके परिणाम बहुत ठीक निकलते हैं। इससे बढ़कर मुझको

और कोई कार्य नहीं मालूम। जितने अच्छे कार्य तुम्हारे विद्यार्थियोंकी पहुंचमें हों उन्हींके सम्पादन करनेमें उनको लगाये रहना चाहिए। निर्धनोंकी हितकामना और उनकी चिन्ता होनी चाहिए। उनको गरीबोंकी मदद न केवल रुपयेसे ही करनी चाहिए बल्कि अपने हाथोंसे उनके दुःख और क्लेशोंके कम करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। उनको उनकी सेवा शुश्रूषा करनी चाहिए। उनकी रक्षा करना उनका धर्म होना चाहिए। उनकेलिये विद्यार्थियोंको अपना तन, मन, धन अर्पण करना श्रेयस्कर हैं। उनको इससे बढ़कर और कोई दूसरा नेक काम नहीं मिल सकता।

समय समयपर नवयुवकोंको कैदखाने, अस्पताल और भी अन्य प्रकारके दुखःदायी दृष्टान्तोंको दिखलाना चाहिए जिसमें इन क्लेशोंके दूर करनेके भाव उनके मनमें उत्पन्न हों। पर इन दृश्योंको बहुत मरतबे न दिखलाना चाहिए नहीं तो उनकी चित्तकी वृत्तियां कठोर हो जावेंगी।

इसी प्रकार परोक्ष रीतिसे रूसोने एमिलीकी धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध किया है। अब तक एमिलीको परमेश्वर तथा जीवात्माके विषयमें कुछ हाल नहीं मालूम है। इस नीतिको रूसी अच्छा भी समझता है क्योंकि उसकी सम्मतिमें ईश्वरके सम्बन्धमें तुच्छ, असत्य, काल्पनिक, अशिष्ट और भ्रान्त विचारोंकी अपेक्षा कोई विचार रखना ही अधिक श्रेयस्कर होगा। जब उसको संसार तथा प्रकृतिका पूर्ण ज्ञान हो जायगा तब वह स्वयम् सृष्टि-सम्बन्धिनी सर्वव्यापक शक्तिकी खोजमें लग जायगा। जब तक उसको प्रत्यक्ष निकट वस्तुओंका ज्ञान नहीं तब तक उसको ईश्वरके विषयमें ज्ञातव्य बातोंका मालूम करना सम्भव नहीं है। सृष्टि-सौन्दर्य

तथा नियम जाननेके बाद वह सृष्टि-निर्माता जगन्नियन्ता परमेश्वरकी खोजमें भी लग सकता है। धार्मिक शिक्षामें किसी मत या पन्थ विशेष साम्प्रदायिक मन्तव्योंका समावेश न करना चाहिए पर धार्मिक सिद्धान्त बड़े उदार और प्राकृतिक होने चाहिए। *रूसोकी इस शिक्षण पद्धतिमें ईसाई मजहबको स्थान नहीं मिला है।*

रूसोकी राय है कि इस अवस्थामें जब नवयुवककी बुद्धि परिपक्व और उन्नत हो जाती है तब उसको इतिहास पढ़ाना चाहिए। पर इसके अभ्यास करानेमें शिक्षाके मौलिक और प्रधान सिद्धान्तको हमेशा दृष्टिमें रखना चाहिए कि बच्चोंको अपनी बुद्धिकी उन्नति अपने आप करनेकी उत्तेजना देनी चाहिए। रूसो इतिहासकी सहायतासे बालकोंकी आलोचना और विवेचना शक्तिको विकसित करना चाहता है। इस कामकेलिये रूसो आलोचनात्मक ऐतिहासिक पुस्तकोंका निषेध करता है क्योंकि ऐसी पुस्तकें ग्रन्थकारोंकी सम्मतियों और आलोचनाओंसे परिपूर्ण होती हैं. नवयुवकोंको ऐतिहासिक घटनाओं और बातोंकी आलोचना अपने आप करनी चाहिए। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो समझ लेना चाहिए कि वे दूसरोंकी आखोंसे देखते हैं। जब दूसरोंकी आखें नवयुवकोंके पास न होंगी तो उनको कुछ भी दृष्टिगोचर न होगा।

(५) स्त्रीशिक्षा—

शिक्षाके उपरोक्त चार क्रमोंको समाप्त कर एमिली प्रौढ़ावस्थाको प्राप्त करता है और विवाह करने योग्य हो जाता है। इसलिये उसकेलिये योग्य सहधर्मिणी ढूंढनेकी आवश्यकता है जिसके गुणोंसे खूब परिचित होना चाहिए। इसलिये एमिली आदर्श मनुष्यकी शिक्षाके बाद रूसो सोफी, आदर्श स्त्रीकी

शिक्षाकी मीमांसा करता है। शिक्षाके इस क्रममें रूसोने अपनी बड़ी निर्बलता प्रकाशित की है और 'एमिलो' का यह विभाग दोषों और त्रुटियोंसे परिपूर्ण है जिनका लिखा जाना ऐसे स्वतंत्र विचारक रूसोकेलिये बड़ी अशोभित बात है। बालकोंकी शिक्षाके विषयमें जिस उदार और स्वाधीन रूसोने उच्च विचारोंको पल्लवित किया हो, उसीको स्त्रीशिक्षा विषयक संकुचित और संकीर्ण विचारोंको प्रवर्त्तित करते हुए देख किस सहृदय और विचारशील मनुष्यको दुःख न होगा। स्त्री-शिक्षामें रूसोने उस अपने मौलिक सिद्धान्तके ऊपर पानी फेर दिया कि प्रत्येक व्यक्तिको अपने निजी अधिकारों और आवश्यकताओंके अनुसार अपने आप अपनी शिक्षाका प्रबन्ध करना चाहिए। बालकोंकी शिक्षामें स्वतंत्रताका दम भरनेवाले जिस रूसोने स्थान स्थानपर इस सिद्धान्तकी दुहाई दी है, स्त्री-शिक्षामें उसको इस सिद्धान्तसे पीछे हटते देख उसकी एकपक्षीय स्वतंत्रताका पता लग जाता है। जिस रूसोने मनुष्योंकी स्वतंत्रता और समानताकी घोषणासे यूरोपमें आतङ्क-सा उत्पन्न कर दिया हो, पुरुषोंके प्रसन्न और आमोद-प्रमोद करनेकेलिये स्त्रियोंको कठपुतलियाँ समझना उसके लिये हास्यास्पद है। बलिहारी है ऐसी बुद्धिकी।

चाहे जिस प्रकारकी शिक्षा स्त्रियोंको दी जावे, उसका मुख्य उद्देश यह होना चाहिए कि स्त्रियां पुरुषोंके विशेष उपयोगिनी हो सकें। पुरुषोंकी ज़रूरतोंको दृष्टिमें रख कर, स्त्री-शिक्षाका क्रम होना चाहिए। पुरुषोंकी तरह यदि स्त्रियोंको शारीरिक शिक्षा दी जावे, तो वह शिक्षा इसलिये नहीं दी जाती है कि इससे स्त्रियोंके शरीर स्वस्थ रहें, बल्कि इसलिये कि उनका शारीरिक सौन्दर्य बढ़े और वे हृष्टपुष्ट सन्तति उत्पन्न

कर सकें। सूची काम और गोटापट्टा बनाना आदि इसलिये स्त्रियोंको सिखलाना चाहिए, जिसमें वे अच्छे वस्त्र पहिनकर अपने पतियोंको प्रसन्न कर सकें। उनको शीघ्र पुरुषोंकी अधीनता स्वीकार करनी चाहिए, पतियोंके दुर्गुणोंकी निन्दा स्त्रियोंको कभी न करनी चाहिए, और पति चाहे जितनी ज्यादतियां स्त्रियोंके ऊपर करें, उनको चू तक न करना चाहिए। कहो इस स्वेच्छाचारिता और निरङ्कुशताकी हद भी है। 'मनुष्योंको प्रसन्न रखना, उनके उपयोगी बनना, उनकी प्रेम-पात्री बनना, बच्चोंको पालन पोषण करना और जब वे प्रौढ़ हो जावें, तो उनकी सेवा शुश्रूषा करना, उनको सलाह और तसल्ली देना, उनके जीवनको मनोरञ्जक और सार्थक बनाना सब युगोंमें स्त्रियोंके ये ही काम रहे हैं' ये वचन रूसोके हैं। जिस प्रकारकी शिक्षा स्त्रियोंको देनी चाहिए इसका अन्दाज़ा अब हम कर सकते हैं। धार्मिक शिक्षामें कन्याओंको साम्प्रदायिक मन्तव्य छोटी ही उम्रमें बतला देने चाहिए। छोटी उम्रमें कन्याका मज़हब अपनी माताका मज़हब होता है और बड़े होनेपर जिस धर्मका उसका पति अनुयायी है वही उसको भी मानना चाहिए। चाहे एक स्त्री दर्शनशास्त्र, कला या विज्ञान न सीखे, पर उसको मानवी मनोविकारोंकी शिक्षा मिलनी चाहिए जिसमें वे उनके मनोगत भावोंको भली भांति जान सकें और चित्ताकर्षक बन सकें। इस प्रकारकी शिक्षा आदर्श स्त्री सोफीको दी जाती है। शिक्षा समाप्त कर सोफीका व्याह एमिलीसे हो जाता है।

'एमिली' के गुण और दोष।

रूसोकी प्राकृतिक और निजी शिक्षा, जो पुरुषोंकेलिये उपयोगिनी है, उसका नमूना ऊपर दिया गया है और किस प्रकार

इस सिद्धान्तके विपरीत उसने स्त्रीशिक्षाका स्वरूप ऊपर वतलाया है। रूसोका अनुमान, नहीं नहीं दृढ विश्वास, है कि इस शिक्षाप्रणालीके अनुकूल चलनेसे सुख और शान्तिका राज्य इस संसारमें स्थापित किया जा सकता है, जिसको देखकर इन्द्र भी मोहित हो जायंगे। 'एमिली'के गुण दोषोंका ठीक ठीक अन्दाज़ा लगाना बडी कठिन बात है और यह भी स्पष्ट है कि 'एमिली' के सिद्धान्त अक्षरशः व्यवहारमें नहीं लाये जा सकते। यह पुस्तक परस्पर विरोधी बातों और ग़लतियोंसे भरी हुई है और जिस शिक्षाप्रणालीकी व्यवस्था इस पुस्तकमें दीगयी है, उसको सम्यक्रूपमें प्रवर्त्तित करना रामराज्यमें ही सम्भव है। यदि थोडी देरकेलिये हम उसके घृणोत्पादक आचरणके ऊपर दृष्टिपात न करें, यदि हम उसकी नैतिक त्रुटियोंके ऊपर ध्यान न दें और यदि हम उसकी परस्पर विरोधी बातोंका ही ख्याल करें, तो हमको मुक्त कण्ठसे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रूसोके शिक्षणसिद्धान्तोंमें बहुत सार है। दोषोंकी अपेक्षा गुणोंका बाहुल्य है। दोषोंकी अपेक्षा गुणोंका तौल अधिक है।

आरम्भमें ही यह स्वीकार करना पडेगा कि 'एमिली' पुस्तककी तर्कना प्रणाली तथा विचार शृङ्खला सदोष हैं। रूसो कभी आशावादी और कभी निराशावादी मालूम पडता है। कभी कभी दृश्योद्वार और कभी प्रमाणिकताके ऊपर वह ज़ोर देता है। कभी वह उदार है तो कभी वह अनुदार भी है। यद्यपि उसकी यह धारणा है, कि मानवी समाज नितान्तः भ्रष्ट है तो भी जिन व्यक्तियोंसे समाज बना है, वे नेक होते हैं—ऐसा रूसोका विश्वास है। ज्ञानोपार्जनकेलिये वह प्रकृतिका विरोध करता है यद्यपि इतिहास और मानसशास्त्र इस बातका समर्थन नहीं करते। यद्यपि आदर्श पुरुष एमिलीको सभाओं और

वृत्तियोंके विकासमें पूर्ण स्वतंत्रता दी जाती हैं, तो भी सच यह है कि उनकी उन्नतिकी बागडोर शिक्षकके हाथमें है। एमिलीमें, जहां तक सम्भव है, वहां तक व्यक्तिगत उन्नतिके ऊपर खूब ज़ोर दिया गया है पर आदर्श स्त्री सोफीके विषयमें इसका विपर्य्यय है। इन स्पष्ट दोषोंके होनेपर भी 'एमिली' पुस्तककी क़दर सब समयमें बेहद की गयी है।

रूसोकी शिक्षण-पद्धतिकी सबसे मुख्य बात यह है (और जिसके ऊपर खूब कटाक्ष हुए हैं) कि उसमें रूसोने सब सामाजिक बन्धनों और सभ्यताके विरुद्ध बग़ावत करनेकी आज्ञा दी है। प्राकृतावस्थाको ही उसने आदर्श अवस्था माना है [पर बहुतसे मनुष्य प्राकृतावस्थासे वन्यावस्था अर्थात् जंगलीपनके माने ग्रहण करते हैं] और सब सामाजिक बन्धन नष्ट हो गये हैं। शिक्षाकेलिये बालकको एकान्तवास करना पड़ता है और १५ वर्षकी उम्र तक उसको सामाजिक तथा राजनैतिक शिक्षा नहीं दी जाती है। इस समाज विद्रोही शिक्षा-पद्धतिकी अग्रहणीयतापर हमेशा लोगोंने तीव्र आक्षेप किये हैं।

इस प्रकार यदि एक बालक १५ वर्षकी उम्र तक समाजसे पृथक् रहता है, तो वह हज़ारों वर्षोंके उपलब्ध किये ज्ञानसे वञ्चित रहेगा। पर बालककी इस पृथकताको विचार करते समय हमको रूसोके आन्तरिक अभिप्रायके समझनेकी कोशिश करनी चाहिए। जब रूसोने इस सिद्धान्तको प्रवर्त्तित किया तो उस युग और तात्कालिक देशस्थितिकेलिये इन सिद्धान्तोंकी बड़ी आवश्यकता थी। कभी कभी सुधारकोंको अपने सिद्धान्तोंमें बड़ी उग्रता तथा उद्दण्डता प्रकाशित करनी पड़ती हैं जिसमें सर्वसाधारण मनुष्यों तक उनकी आवाज़ पहुंच जाय और उनके सिद्धान्तोंपर लोग ध्यान दें। जब मनुष्य गहरी नींदमें

सोये हुए हैं, तो उनको जाग्रत करनेकेलिये 'पंचम' स्वरमें चिल्लाना पडता है। जिस समय रूसोने इस सिद्धान्तको लिखा था, उस समय यूरोपकी दशा बडी विचित्र थी। लोगोंको पुरानी बातोंसे असीम प्रेम था। वे प्राचीनताके अन्धे भक्त थे। उनका इस दासत्ववृत्तिसे मुक्त करनेकेलिये रूसोके इस वाग्युद्धकी अत्यन्त आवश्यकता थी। उस समय स्कूलोंमें शिक्षासबन्धी वाग्युद्धकी संगठन, पाठ्य विषयों और दर्जोंकी इतनी गिरी हुई दशा थी और वे इतने अस्तव्यस्त थे, कि उनका घोर विरोध करना ही श्रेयस्कर मालूम होता है। रूसोने उनके ऊपर जो कुठाराघात किये हैं, उनसे क्षति पहुंचनेके विपरीत आशातीत लाभ मिले हैं। रूसोके सिद्धान्तोंकी उत्कृष्टता इसीसे सिद्ध होती है कि पेस्टलोज़ी, हर्बार्ट, और फ्रीबल आदि बडे बडे शिक्षण सुधारकों-केलिये रूसोके सिद्धान्त शिरसावन्द्य हैं। उनके सिद्धान्त वास्तवमें रूसोके सिद्धान्तोंके ही ऊपर अवलम्बित हैं।

'एमिली' के विभागोंकी 'गढ़न्त' बिल्कुल मनमानी है। उसमें बालककी ज़रूरतों और शक्तियोंपर बहुत कम ध्यान दिया गया है। जैसा रूसोने लिखा है कि '१२ वर्षकी उम्र तक बच्चों-की तर्कना बुद्धि सोई हुई रहती है' वह बात यथार्थ नहीं है। इस अवस्थाके पूर्व ही बच्चोंमें तर्कना बुद्धि आ जाती है। शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका विकास साथ ही साथ होता है। एक प्रकारकी शक्तियां दूसरोंसे पृथक् नहीं की जा सकती हैं। साहित्य और इतिहास शिक्षाकी जो अवहेलना इस पुस्तकमें दिखलायी गयी है, वह भी बडी दोषजनक है। एमिलीमें रूसोने पुस्तकोंकी भरपेट निन्दा की है और इसीलिये उसने निरीक्षण और अनुमान (निगमन) की बेहद महिमा गायी है।

बाणोंकी वर्षा की थी। इस वर्षाका परिणाम यह हुआ कि लोगोंमें चैतन्यता आ गयी और वे प्रचलित शिक्षा पद्धतियोंकी रक्षामें जुट गये। पर जब वे उनकी रक्षा न कर सके तो वे अच्छी और प्रशस्त प्रणालियोंकी खोजमें लग गये। उस समय मानवी समाजमें कृत्रिम और अमानुषिक प्रथाओं और दुर्गुणोंका इतना प्रसार था कि उनकी चिकित्सा करनी असम्भव थी। उनको खोदकर बाहर फेंक देना ही रूसो चाहता था। जहां जहां रूसोको अस्वाभाविकता नज़र आयी वहां वहां उसने उसका घोर विरोध किया। इसी प्रकार उसने शिक्षाके प्राचीन और अस्वाभाविक सगठनको बुरा समझा जिसमें प्रामाणिकताका अखण्ड साम्राज्य था। आदिम मनुष्यके गुणोंकी प्रशंसा करके, उसने सामाजिक सगठनमें स्वाभाविकताकी ज़रूरत दिखायी। समाजमें रहनेवाले मनुष्योंको इस प्रकारकी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे वे अपने जीवनको सार्थक कर सकें, अपने आप अपना निर्वाह भी कर सकें और इसके साथ साथ वे अपने अन्दर सभ्यभाव भी स्थापित कर सकें। मनुष्योंके कल्याण और लाभका विचार और शिक्षाको एक ही साथ आना चाहिए। यदि एक दूसरेसे पृथक् हो जायगा, तो शिक्षाका उद्देश्य पूर्ण न हो सकेगा। आजकल रूसोके ऐसे विचारोंके कारण ही मनुष्योंका ध्यान नैतिक शिक्षा और उद्योग धन्धे सम्बन्धिनी शिक्षाके ऊपर गया है। शिक्षाके ढगमें भी उसने नैसर्गिकताके लानेकी चेष्टा की है। शिक्षाके मैदानमें वह पहिला सुधारक है जिसने बालकोंके अध्ययन करनेकी ज़रूरत बतलायी है। उसकी शिक्षण पद्धतिमें फ्रोबलके प्रतिपादित किये हुए बालोद्यानके अङ्कुर पाये जाते हैं। जिन जिन विषयोंकी शिक्षा दी जावे, उनका क्रम और तरीक़ा बच्चेकी

मानसिक शक्तियोंकी वृद्धिके अनुसार होना चाहिए। रूसोके पहिले और अब भी बहुतसे मनुष्य यह मानते हैं कि बच्चा मनुष्यका प्रतिबिम्ब है अर्थात् जो जो शक्तियां मनुष्योंमें होती हैं, उनके अङ्कुर बच्चोंमें अवश्य पाये जाते हैं। रूसोकी ऐसी धारणा नहीं है। रूसोका विचार है कि बच्चा स्वभावसे नेक होता है और माया मोहके साथ खराब नहीं होते हैं। रूसोके पहिले लोग बच्चोंकी चित्तवृत्तियोंको दमन करना ही अच्छा समझते थे। उनको प्रतिबन्धमें रखनेसे बच्चेका कल्याण होता है ऐसा उनका विश्वास था। मानसिक शक्तियोंकी वृद्धिके-लिये केवल स्मरण-शक्तिकी ही आवश्यकता है। तोतोंकी तरह रटनेमें ही शिक्षाकी समाप्ति होती है। इन सब विचारोंके विरुद्ध आन्दोलन करनेका यश केवल रूसोको ही मिल सकता है। शिक्षा एक स्वाभाविक क्रम है न कि कृत्रिम, अर्थात् बच्चों-की वृद्धि आन्तरिक होनी चाहिए। शिक्षाका उद्देश्य स्वाभाविक शक्तियोंका विकास होना चाहिए न कि केवल ज्ञान प्राप्ति। *स्वाभाविक वृत्तियोंका शिक्षण बच्चोंके प्रयत्नपर अवलम्बित* करना चाहिए। ये ही रूसोके विचार हैं।

कमीनियस पहिला शिक्षण सुधारक था जिसने शिक्षकके कर्त्तव्योंके ऊपर पूरा ध्यान दिया। मनुष्यके स्वभाव और भाग्यको दृष्टिमें रख कर शिक्षाका कार्य आरम्भ करना चाहिए, पर उसने ज्ञानप्राप्तिके ऊपर *अधिक ज़ोर दिया है।* कमी-नियसके अनुसार आदर्श मनुष्यको सब वस्तुएं जाननी चाहिएँ और इसीलिये व्यवहारमें शिक्षाभ्यासके ढंग पर उसने बड़ा ज़ोर दिया। तब महानुभाव लाकका समय आया, तो उसने चरित्र-गठनके सामने ज्ञानप्राप्तिको बहुत ही तुच्छ ठहराया। उसने *सभ्यजनोचित शिक्षाको ही अच्छा बताया और वह सामाजिक*

बन्धनोंका बड़ा क़ायल था। रूसो ही पहिला शिक्षण सुधारक था जिसने यह बतलाया कि—

(क) मनुष्य ज्ञानप्राप्तिका यन्त्र नहीं है।

(ख) बालकोंके अध्ययनके आधारपर शिक्षाको रखना चाहिए।

इन्हीं दो बातोंकेलिये रूसोका नाम प्रसिद्ध शिक्षण सुधारकोंमें गिना जाता है।

पेस्टलोज़ी

भूमिका

पाठकोंको रूसोके जीवनचरितसे मालूम हो गया होगा कि जितने सिद्धान्तोंको उसने प्रवर्त्तित किया वे सब विध्वंसकारी थे। रूसोने राजकीय निरङ्कुशता, प्रामाणिकता, सामाजिक प्रथाओं, जिनमें कपट छलकी मात्रा अधिक थी और कृत्रिम वातोंके गढ़को छिन्न भिन्नकर दिया पर उस गिराये हुए गढ़के स्थानकी पूर्ति न की। यह पेस्टलोज़ी ही था जिसको नष्टभ्रष्ट गढ़के स्थानपर एक सुन्दर, विशाल और स्थायी भवनके बनानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। एमिलीमें रूसोने केवल निषेधात्मक शिक्षा और विरोधात्मक नैसर्गिकताके ही सिद्धान्तोंका निरूपण किया। यह पेस्टलोज़ीके उद्योगोंका फल है कि उसने उनको विधानात्मक रूप धारण कराया। पेस्टलोज़ीने यथार्थ शिक्षा और नवीन शिक्षण रीतिके द्वारा अवनत समाजको लाभ पहुंचानेकी कोशिश की।

जिन कार्योंके सम्पादन करनेकी उत्तेजना हम दूसरे मनुष्योंको देते हैं, उनके उत्तरदायित्वका भार हमारे ही ऊपर पड़ता है। इस नियमकी सत्यता महान पुरुषोंके जीवनचरितके पढ़नेसे बहुत स्पष्ट हो जाती है। बड़े बड़े धर्मप्रवर्तकों और विद्वानोंके कार्योंको इस कसौटीपर कसनेसे उनका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है और उनके कार्योंका दायरा इतना विस्तृत हो जाता है जितने विस्तारका स्वप्न उनके मनमें कभी भी न उत्पन्न हुआ होगा। उनके जीवनके प्रभाव बहुत व्यापक हो जाते हैं। इस विचारके अनुसरणसे रूसोको यश और अपयश दोनोंका भागी होना पड़ता है। जहां एक ओर रायसपीयरी और

जहां जुएनके अपराधोंका आरोपण रूसोके ऊपर किया जाता है, वहां दूसरी ओर उसीकी बदौलत पेस्टलोजीका ध्यान कृषि और शिक्षाकी ओर आकृष्ट हुआ था।

रूसो एक ऐसा शिक्षण सुधारक हो गया है जिसके प्रवर्त्तित किये हुए शिक्षण सिद्धान्तों और कार्योंमें बड़ा विपर्यय है। उनमें कुछ भी सादृश्य नहीं। उसके जीवनकी प्रत्येक घटनासे उसकी लेखनीसे निकले हुए वचनोंका असर बहुत कम हो जाता है और वे फीके मालूम होने लगते हैं। रूसोने दूसरोंको उपदेश दिया कि प्राकृतावस्थामें ही रखकर एकान्तमें बालकों-की शिक्षाका प्रबन्ध करना चाहिए पर उसने स्वयम् अपने सन्तानोंको अपने सिद्धान्तोंसे वञ्चित रखा और उनको अनाथालयोंमें भेज दिया करता था। पर पेस्टलोजी अपने सिद्धान्तोंका अनुयायी है। जिस बातको उस-ने लिखा, उसको व्यवहारमें लानेकी उसने पूर्ण चेष्टा की। उसकी जीवन घटनाओंसे उसके सिद्धान्तोंके समझनेमें बड़ी सहायता मिलती है। उसकी जीवन घटनाएं उसके लेखोंका भाष्य हैं। जितना विस्तारपूर्वक उसके जीवनचरितका वृत्तान्त लिखा जायगा उतना ही उसके सिद्धान्तोंका मर्म हृद-यग्राही हो जायगा।

पेस्टलोजीकी बाल्यावस्था

स्विट्जरलैंडके जूरिक नगरमें जान हेनरी पेस्टलोजीका जन्म सं० १८०३ में हुआ। जब वह पांच वर्षकी उम्रका था तभी उसके पिताका शरीरान्त हो गया। इसलिये उसके तथा उसके एक भाई और बहिनके पालन पोषणका भार उसकी सती, साध्वी और निस्स्वार्थी माता और बबेली नामक ईमानदार

हाथोंके ऊपर आ पड़ा। उसकी माताकी निस्स्वार्थपरायणता और सच्ची धर्मनिष्ठासे उसको बहुत ही लाभ मिले। उनकी दी हुई शिक्षाने पेस्टलोजीके शिक्षणीय विचारोंपर बड़ा स्थायी प्रभाव पड़ा। आगे चलकर इसी अनुभवसे पेस्टलोजीने लिखा कि घर ही पाठशालाका सच्चा नमूना है, जहांपर स्नेह, ममता और सहकारिताका राज्य होता है। इसी शिक्षासे प्रभावान्वित होकर पेस्टलोजीने खूब ठीक कहा कि मानसिक शिक्षाके साथ साथ हृदय और हाथकी भी शिक्षा होनी चाहिए यदि मनुष्यका पुनरुद्धार करना अभीष्ट है। निस्सन्देह उसने माताओंको आदर्श शिक्षक स्वीकार किया है। पर इसी शिक्षाके कारण वह करुणार्द्र और व्यवहारज्ञान शून्य भी हो गया और उसकी कल्पनाशक्ति भी बहुत बढ़ गयी।

लड़कपनमें जब वह मदरसेमें पढ़नेको भेजा गया तो वहांके विद्यार्थी उसकी हँसी किया करते थे। उन्होंने हँसीमें उसको मूर्खराजकी पदवी प्रदान की थी पर इतना होनेपर भी उसने उनके मनोंको अपनी निस्स्वार्थपरायणतासे अपने वशमें कर लिया। एक समयकी बात है कि भूकम्प आनेके कारण जब सब शिक्षक और लड़के मदरसेसे चम्पत हो गये, तो यह पेस्टलोजी ही था जिसने अपनी जानकी रत्तीभर परवाह न कर उनके कहनेपर किसी मूल्यवान वस्तुके लानेकेलिये पाठशालामें जानेको सहर्ष तैयार हो गया। छुट्टियोंमें वह अपने नानाके पास रहा करता जो ज़ुरिक नगरसे तीन मील दूर एक गांवमें रहता था। उसका नाना वहांका धर्माध्यक्ष था। वहांपर जानेसे उसको गांवनिवासी किसानोंकी दुर्गतिका बहुत कुछ हाल मालूम हो गया। इन्होंकी दुर्दशाको देखकर उसने अपने मनमें ठान लिया कि मैं अवश्य इनके दुःखनिवारण और

उन्नतिका भरसक प्रयत्न करूँगा। कारखानोंमें काम करनेसे छोटे बालकोंकी बाढ़ कैसी मारी जाती है, और कैसे कैसे दुःख और क्लेश उनको सहन करने पडते हैं—यह भी हृदय-विदारक दृश्य उसके सामने उपस्थित होता था। इन शोक-जनक कथाओंसे उसकी प्रवर्त्तित शिक्षण पद्धतिपर बड़ा प्रभाव पडा। नानाके समान धर्माध्यक्ष होनेकी आकांक्षा उसके मनमें भी उत्पन्न हुई जिसमें वह मनुष्योंका उपकार कर सके। वह धर्मोपदेशकका काम सीखने लगा पर इसमें उसका मनोरथ विफल हुआ। उसने इसको छोड़कर अपने देशनिवासियोंकी स्वत्व रक्षाके अभिप्रायसे वकालत पढ़ना शुरू कर दिया पर इसमें भी उसको असफलता हुई।

विद्यार्थी अवस्थामें 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' वाली कहावत उसने चरितार्थ कर दी। उस समय ज़ूरिकके छोटे विश्वविद्यालयमें विद्याकी बड़ी चर्चा थी। उसके विद्यार्थियोंमें मानसिक और नैतिक उत्साह बहुत था। वहांके कुछ प्रसिद्ध अध्यापकोंने लोगोंमें आदर्शजीवन प्राप्त करनेकी अगम्य उत्कण्ठा पैदा कर दी थी जिसके कारण विद्यार्थियोंकी एक मण्डली, जिसमें पेस्टलोज़ी भी था, उत्साही सुधारक हो गये। इसी समय रूसोकी प्रसिद्ध पुस्तकें, 'सामाजिक नियम' और 'एमिली' प्रकाशित हुईं, जिन्होंने पेस्टलोज़ीके ऊपर बड़ा असर डाला। ज़ूरिककी उस सुधारक मण्डलीकी क्रोधाग्नि भभक उठी जिसकी 'मिमोरियल' नामक मुखपत्रिका थी। यद्यपि उसमें राजनीतिकी चर्चा नहीं की जाती थी, तो भी उस मण्डलीके एक सदस्य मूलरके एक भड़कीले लेख निकलनेपर, वह बन्द कर दी गयी और षड्यन्त्रके अपराधमें पेस्टलोज़ी और उसके कुछ साथियोंको कारागृहकी हवा खानी पडी। इसी साप्ताहिक

पत्रिकामें पेस्टलोज़ीके कुछ लेख भी निकला करते थे। अभी उसकी उम्र केवल १६ वर्षकी थी पर उसके लेखोंसे गम्भीरता और उत्साह टपकते थे। उसके इन लेखोंसे पता चलता है कि उस समय भी वह शिक्षाकी अच्छी रीतिकी खोज और प्रसारमें दत्तचित्त था और शिक्षासम्बन्धी उसके विचार बड़े उच्च थे।

रूसोकी स्वाभाविकता पेस्टलोज़ीको बहुत पसन्द आयी। इसी धुनमें आकर उसने वकालत और सरकारी नौकरीको एक तरफ रखकर खेती करनेका पक्का इरादा किया। इसी अभिप्रायसे बर्न नगरके समीप वह एक मशहूर हस्तकुशल मनुष्यसे एक वर्षतक कृषिविद्या सीखता रहा। वहांपर रहकर खेतीके जिन नये अच्छे तरीक़ोंको उसने सीखा था, किसानोंको उन्हींके लाभ दिखानेकी आशासे बर्नमें उसने कुछ ऊसरपर खेती करना आरम्भ कर दिया। इस खेतीके स्थानका नाम उसने निवहाफ रक्खा। यह सं० १८२६ की बात है। इसी साल उसने एक उच्च विचारवाली स्त्रीका पाणिग्रहण किया जिसने अपने पतिका साथ लगातार ४६ वर्षतक सुख दुःखमें दिया। पांच सालके अन्दर ही इस अनुभवका अन्त हो गया। इससे उसको बहुत घाटा हुआ। इसी बीच उसके एक पुत्र हुआ। एमिली पुस्तकके अनुकूल स्वाभाविक रीतिसे उसने अपने पुत्रकी शिक्षा आरम्भ की। इसमें पेस्टलोज़ीको शिक्षासम्बन्धी बड़े लाभ हुए पर वह साधारण मनुष्योंकी अवस्थासे बहुत चिन्तित रहता था। उनको उन्नत करनेका राजमार्ग शिक्षा था। उसका मतलब पुस्तकीय शिक्षासे न था। उसकी धारणा थी कि जीविका प्राप्त करनेकी शिक्षाके साथ साथ गरीबोंके लड़कोंको अपनी बुद्धि और आत्माके विकसित करनेका अवसर भी प्राप्त हो सके।

निवहाफमें पाठशाला

खेतीमें नाकामयाबी होनेके बाद वह सर्वोपयोगिनी शिक्षाके अनुभवमें लग गया। सं० १८३१ में उसने २० नितान्त गरीब लड़कोंको अपने घरपर रखा। वह इनको पुत्रवत् खिलाता, कपड़े देता और बड़े खातिरसे रखता। इस प्रकार उसने गरीबोंकेलिये पहिला औद्योगिक मदरसा चलाया जो सं० १८३२ से १८३७ तक प्रायः सफलतापूर्वक जारी रहा। व्यवहारकी दृष्टिसे इन लड़कोंको खेती और मालीके कामोंकी शिक्षा दी जाती थी और लड़कियोंको गृहस्थीसम्बन्धी काम और सूचीविद्याका अभ्यास करना पड़ता था। साथ ही साथ लड़कों और लड़कियोंको रुईको कातना और बुनना भी पड़ता था। जब इन लड़कोंको लिखना पढ़ना भी न सिखाया गया था तभी इनको धर्मपुस्तक इंजीलके कुछ अंशोंको कण्ठाग्र करना पड़ा था। इनको अङ्कगणितका अभ्यास कराया जाता और पढ़ना लिखना भी बतलाया जाता था। बहुत करके काम करनेके समय इनको विद्याभ्यास कराया जाता। थोड़े ही महीनों-में इनकी अवस्थामें बड़ा फेर फार हो गया। लड़कोंमें शरीर, मन और आचरणसम्बन्धिनी आश्चर्यकारिणी उन्नति हुई, यहाँ-तक कि उनमें हस्तकौशल भी बहुत कुछ आ गया। पेस्टलोज़ीको अपने अनुभवकी सफलतासे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने लड़कोंकी संख्या बढ़ा दी। सं० १८३७ में अर्थकृच्छ्रताने उसको आ दबाया और उसका दिवाला निकल गया। इसके दो कारण हैं-(१) उसमें प्रबन्ध करनेका माद्दा न था। अकेले पेस्टलोज़ीको ही प्रबन्धक, किसान, सौदागर, कारीगर और अध्यापकके कार्य करने पड़ते थे। इन सब कामोंकी योजना उसकी शक्तियोंसे बाहर

थी और (२) लड़के भी गिरी हुई और छोटी जातिके थे। बहुत-से भिखमंगोंके लड़के थे जिनमें दुर्गुण भरे थे और जो पेस्टलोज़ीके उपकारको माननेकी कौन कहे, उसके साथ धृष्टताका बर्ताव करते और वे लड़कोंको नए कपड़े लेकर भाग जानेकी उत्तेजना दिया करते।

इसके बाद पेस्टलोज़ीने अपने जीवनके १८ वर्ष साहित्य सेवामें लगाए। सं० १८३७ से लेकर १८५५ तक वह सामाजिक सुधार और शिक्षासम्बन्धी लेख लिखता रहा। चाहे उसने सामाजिक या राजनैतिक सुधारसम्बन्धी विषयोंपर लेख लिखे, चाहे उसने शिक्षासम्बन्धी विषयोंपर अपने विचार प्रकट किये, इन सब लेखों और विचारोंसे एकही स्वर निकलता था कि केवल शिक्षाद्वारा ही सामाजिक और राजनैतिक सुधारोंकी सम्भावना हो सकती थी। प्रचलित शिक्षासे ऐसा होना सम्भव नहीं था बल्कि एक नई प्रकारकी शिक्षासे जिससे मनुष्योंका नैतिक और मानसिक सुधार हो सके। पेस्टलोज़ीकी सबसे पहिली पुस्तक 'सन्यासीके सायंकालका समय' नामक है, जिसमें केवल शिक्षासम्बन्धी विषयोंकी चर्चा की गयी थी। इस पुस्तकमें १८० सूत्रोंका संग्रह है। एक विद्वानका कथन है कि यह पुस्तक उसके अनुभवका फलस्वरूप है और यह उसके शिक्षणशास्त्रकी कुञ्जी है, पर बहुत कम मनुष्य इस पुस्तकको समझ सके। इसपर लोगोंका ध्यान भी कम गया। अपने विचारको सुबोध रूप देनेके ख़यालसे पेस्टलोज़ीने 'लेयोनार्ड और गेर्ट्रूड' नामक कथाकी रचना की। इस पुस्तकमें स्विट्ज़रलैंडके एक गांव बोनलकी अवनत अवस्थाका वर्णन है। किस प्रकार एक सीधी सादी किसानकी स्त्रीने उस गांवमें परिवर्तन किये, किस प्रकार उसने अपने शराबी पति

लैयोनार्डको सुधारा, किस प्रकार उसने अपने बच्चोंको शिक्षा दी, किस प्रकार उसका प्रभाव बुन्नके ग्राम निवासियोंपर पड़ा, और उन्होंने उसके ढंगोंको ग्रहण किया–इन्हीं बातोंका वृत्तान्त उस पुस्तकमें है। आखिर उस गाँवमें एक बुद्धिमान अध्यापक आया और उसने गेर्टूडसे पाठशालाके प्रबन्धका हाल पूछा। जब सरकारको इस पाठशालाका हाल मालूम हुआ और उससे लाभ पहुंचनेकी आशा भी हुई, तो उसने यह निश्चय किया कि समस्त देशमें चोलतमें प्रचलित की गयी शिक्षा पद्धतिका अनुसरण किया जाय। 'लैयोनार्ड और गेर्टूडकी' माँग विशेष करके उपन्यास पढ़नेवाले लोगोंमें हुई। पेस्टलोज़ीकी यह पुस्तक साहित्यरत्नोंमें गिनी जाने लगी। लोग इसको एक मनोरञ्जक कथाही समझते रहे और इसमें वर्णन किये हुए सामाजिक, राजनैतिक और शिक्षासम्बन्धी सुधारकी ओर लोगोंका ध्यान बहुत कम गया। इसके प्रभाव लोगोंमें जम न सके।

स्तानज़में मदरसा

पुस्तकोंको प्रकाशित करनेमें उसको वैसी सफलता न हुई जैसी वह चाहता था। उसको निराशा ही हुई। पर वह चुपचाप न बैठा रहा। अपने शिक्षणीय विचारोंके प्रसारकेलिये उसने 'स्विस् जर्नल' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकालना आरम्भ कर दिया और सं० १८३६ में सालभरतक वह पत्र बराबर निकलता रहा। उसकी ग्राहकसंख्या कम होनेके कारण उसे यह पत्र बन्द कर देना पड़ा। इसमें कोई शक नहीं है कि यह पत्र अपने ढंगका निरालाही था। इसमें महत्वपूर्ण लेख और उपदेश छापे जाते थे पर मनुष्योंमें ऐसे लेखों और उपदेशोंके पढ़नेकी रुचि बिलकुल न थी। इसी साप्ताहिक पत्रमें पेस्टलो-

ज़ीने पहिले पहल उस उपमाकी ओर सङ्केत किया जिससे पेड़ और मनुष्यके विकासमें सादृश्य दिखलाई पड़ता है। इस उपमाको उसने बड़ी ही योग्यता और सफलतापूर्वक घटाया जैसा किसी शिक्षण सुधारकने उस समयतक नहीं किया था। यद्यपि यूरोपके बड़े बड़े विद्वानों और राजनीतिज्ञोंसे उसका परिचय था तोभी निर्धनताके अवश्यम्भावी दुःखोंको उसे सहना पड़ता था। इससे वह विचलित नहीं हुआ। उसे अपने दुःखित और निर्धन भाइयोंकी हितकामनाकी चिन्ता बाधित किये रहती थी। वह हमेशा उनकी दशा सुधारके विचारमें मग्न रहता था। महात्माओंमें यही विलक्षणता हुआ करती है। अर्थ-कृच्छ्रता दूर करनेके विचारमें वह इतना फंस गया कि उसे अपने सिद्धान्तोंके प्रवर्त्तित करने या लेख लिखनेकी फ़ुरसत न मिलती थी।

सं० १८५५ में स्विट्ज़रलैंडमें बड़े मार्केके राजनैतिक परिवर्तन हुए जिनके कारण पेस्टलोज़ीको अपने ख़याली मनसूबोंको व्यवहारमें लानेका अवसर प्राप्त हुआ। उस समय फ्रांस देशमें राज्यक्रान्ति अपनी चढ़ती कलामें थी। वहांके विप्लवकारियोंके आधीन स्विट्ज़रलैंड आ गया जहां पर भी प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित कर दिया गया। इस परिवर्तनसे लाभ होनेकी सम्भावना थी इसलिये पेस्टलोज़ीने इस परिवर्तनका सहर्ष समर्थन किया। इस नवीन राज्यने उसका बड़ा ही आदर किया पर उसके ऊपर दूसरी ही धुन सवार थी। उसको सांसारिक ऐश्वर्यों और सुखोंकी कुछ भी परवाह न थी। उसने इस राज्यसे प्रार्थना की कि मुझे ऐसी पाठशाला दो जहां पर कि हम अपने सिद्धान्तोंके अनुसार शिक्षा दे सकें। उसकी अध्यापकी करनेकी इच्छा थी। राज्यकी ओरसे उसके सुपुर्द

बहुतसे लड़के कर दिये गये जिनके मां बाप युद्धमें मारे गये थे और जो अनाथ थे। इन लड़कोंको लेकर उसने स्तानज़का अनाथालय और मदरसा खोल दिया। इन्हीं लड़कोंके ऊपर पेस्टलोज़ीने अपनी नई शिक्षणीय रीतियोंका प्रयोग किया। यहांपर भी जैसा उसने पहिले किया था वह विद्याभ्यासके साथ साथ लड़कोंको दस्तकारीकी शिक्षा देता था। इन दो प्रकारकी शिक्षाओंके मेलसे न केवल उसको अभूतपूर्व सफलता ही प्राप्त हुई पर उसको इस बातका अनुभव हुआ कि जिन कामों और पाठ्यविषयोंमें लड़कोंका मन लगता है उन्हींसे लड़कोंके मानसिक विकासकेलिये कीमती सामान मिल सकता है। यदि मदरसोंमें इस प्रकारकी कोशिश की जाय तो लड़कोंको मनोरञ्जन भी मिलेगा और उनकी मानसिक शिक्षा भी होगी। थोड़े ही समयमें वह बच्चोंके विश्वास और प्रेमका पात्र हो गया। लड़कोंको भी शारीरिक, नैतिक और मानसिक लाभ प्राप्त हुआ।

इस मदरसेके चलानेमें उसने दूसरोंसे पुस्तकों और सामान आदिकी सहायता लेना अस्वीकार किया क्योंकि वह दूसरोंका एहसानमन्द होना नहीं चाहता था। इस प्रकारकी सहायता लेनेसे शायद उसको अपनी शिक्षण रीतियोंमें परिवर्तन करने पड़ते जो उसे अभीष्ट नहीं था। वह लड़कोंको अनुभव और निरीक्षणके द्वारा ही शिक्षा देनेकी कोशिश करता था, न कि पुस्तकोंकेद्वारा। धर्म और नीतिकी शिक्षा तो उदाहरणद्वारा ही दी जाती थी। जीवनकी घटनाओंसे वह उनको आत्मसंयम, पुण्य, सहानुभूति और कृतज्ञता आदि गुणोंके लाभ बताता था। संख्या और भाषा शिक्षण पदार्थोंको दिखलाकर होता था। इतिहास और भूगोलकी शिक्षा पुस्-

कोंसे नहीं दी जाती थी किन्तु बातचीतद्वारा लड़कोंको इन विषयोंके तत्व बतलाये जाते थे। उसने हिज्जोंके याद करनेकी नई तरकीब निकाली। अक्षरोंके नाम न बतलाकर वह उनके उच्चारणमें उन्हें शुद्ध शुद्ध लिखना सिखलाता। जिस रीतिका प्रयोग उसने किया था, उसका वर्णन उसने स्वयम् लिखा है कि मैंने इसी नियमका अनुकरण किया है कि "पहिले बालकोंके हृदयपट खोलनेकी चेष्टा करो, उनकी नित्यकी दरकारोंको पूरा करो और तब उनके सब मनोविकारों, अनुभव और श्रमके साथ अपनी सहानुभूति और प्रेमका परिचय दो जिससे उनके दिलोंमें इन भावोंका उदय हो। तब इस अभिप्रायको दृष्टिमें रख कर उनको विद्याभ्यास कराओ कि वे भी अपने साथी सङ्गियोंमें अपनी दया और प्रेमको निश्चयपूर्वक प्रकट करना सीख सकें"। यही उसके शिक्षासम्बन्धी प्रभावकी कुञ्जी है। उसने *शिक्षणशास्त्रमें एक नई रीति निकाली और शिक्षामें एक नवीन* जीवनका सञ्चार कर दिया। स्तानज़में ही उसको पहिले पहल सफलता प्राप्त हुई पर युद्धने उसके इस काममें विघ्न डाला और उसको एक ही सालमें यह काम बन्द कर देना पड़ा।

बुर्गडोर्फकी पाठशाला

अब उसको किसी दूसरे कामके मिलनेकी आशा बहुत कम थी क्योंकि सब बातें उसके विपरीत थीं। उसकी आवाज़ *मोटी और उच्चारण अस्पष्ट थे। उसकी लिखावट खराब* थी। चित्रविद्याको वह नहीं जानता था और उसको व्याकरणसे घोर घृणा थी। उसने किसी भी विज्ञानको तफसीलवार नहीं पढ़ा था। यद्यपि अङ्कगणितके साधारण क़ायदे उसको मालूम थे, तो भी वह बड़े बड़े गुणों और भागोंके

करनेमें अटक जाया करता था और उसको रेखागणित कुछ भी न मालूम थी। हाँ, अलबत्ते वह मनुष्यके मन और उसके विकासके नियमोंको भली भाँति जानता था। यदि उसमें यह गुण न होता तो उपर्युक्त त्रुटियोंके कारण उसको कोई पूछता तक न। उसके कुछ एक प्रभावशाली मित्रोंकी सिफारिशसे उसको बुर्गडोर्फ नगरमें अध्यापकीका काम मिल गया। यहाँपर वह स्तानजमें प्रवर्त्तित किये हुए अनुभवमूलक ढंगका अनुसरण करता रहा। मानसशास्त्रके नियमोंके अनुसार उसने पढ़ने और अङ्कगणितके कई विभाग किये जिसमें बच्चोंको पढ़नेमें कठिनता न मालूम पड़े। एक विभागकी बातोंको लड़के आसानीसे और निश्चयपूर्वक सीख लेते थे, तब वे दूसरे विभागकी बातोंके सीखनेमें पदार्पण करते थे। पढ़नेमें वह अक्षरोंको नही बतलाता था पर केवल उनका उच्चारण दूसरे अक्षरोंके साथ क्या होता था, यही बतला दिया करता। पदार्थपाठके द्वारा भाषाकी शिक्षा आरम्भ की जाती और अङ्कगणितके ज्ञानप्राप्तिकेलिये उसने "एकाई वाले तख्ने" निकाले। सीधी और वक्र लकीरें और कोणोंको खींचकर लड़के रेखागणितकी पढ़ाई आरम्भ करते थे। अनुभव और निरीक्षणके द्वारा ही वह भूगोल, इतिहास आदि विषयोंको पढ़ाता था।

बुर्गडोर्फमें ही पेस्टलोज़ीने अपनी शिक्षण पद्धतिके मूल-सिद्धान्तकी घोषणा की जिसके अर्थ बड़े ही व्यापक थे। उसने कहा कि मैं मानसशास्त्रको शिक्षाका आधार बनाना चाहता हू। इसका मतलब यह है कि विद्याभ्यासको मानसिक विकासके अनित्य नियमोंके अनुकूल बनाना चाहिए, और ज्ञानकी बातोंको इतने खण्डोंमें वैज्ञानिक रीतिके अनुसार विभक्त करना चाहिए जिसमें सबसे छोटी श्रेणीके बच्चोंको

भी शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकासके अवसर मिल सकें। जब भाषा उन मनोभावोंको स्पष्टरूपमें प्रकाशित कर सकती है, जिनकी प्राप्ति ज्ञानेन्द्रियों या निरीक्षणकेद्वारा हुई है, भाषा और मनोभावोंके मेलको ही शिक्षाकी नीव समझना चाहिए। शुरूसे इस नियमके अनुसरणसे पेस्टलोज़ीको आश्चर्यजनक फल मिले। उसकी कीर्ति बहुत दूरतक फैल गयी। लोगोंको इस मदरसेके लड़कोंके मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकासको देखकर, चमत्कार मालूम होता था। बुर्गडोर्फके पदाधिकारियोंने उसको ऐसी उन्नतिपर बधाई दी।

सं० १८५७ में पेस्टलोज़ीने अपनी निजी एक पाठशाला खोली। इस संस्थाकेलिये राज्यकी ओरसे कुछ आर्थिक सहायता भी मिलती थी। यह लड़कोंसे भर गया और उसकी शिक्षण पद्धतिके सीखनेकेलिये कुछ अध्यापक भी वहाँ आने लगे। धीरे धीरे वहाँपर उसके मित्रोंकी एक मण्डली बन गयी जिनमें मुख्य मुख्य ये थे— क्रूज़ी, टाब्लर, बस और नीडरर। ये मित्र उसकी शिक्षा देनेकी नई रीतिके परम भक्त थे। इन्हींकी सहायतासे पेस्टलोज़ीको अपने अनुभवमें पूरी सफलता हुई। पेस्टलोज़ीको पिताकी आदरसूचक पदवी मिली थी और इस संस्थाका मूलमन्त्र प्रेम ही था। शिक्षक और विद्यार्थी प्रेमके बन्धनमें बन्धे हुए थे। ऐसी सस्थाको देखकर जहाँपर प्रेमका अखण्ड राज्य था, लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता था। एक समयकी घटना है कि एक विद्यार्थीका पिता पाठशाला देखने आया। वह बड़ा हैरान हुआ और कहने लगा कि यह संस्था पाठशाला नहीं बल्कि कुटुम्ब है। इन प्रशंसा सूचक शब्दोंको सुनकर कहना नहीं होगा कि पेस्टलोज़ीको बड़ी खुशी हुई। बुर्गडोर्फकी यह संस्था जिसमें शिक्षकों-

के पढ़ने और विद्यार्थियोंकी शिक्षाका उचित प्रबन्ध था, दिनों दिन प्रसिद्ध होने लगी और दूर दूर देशोंसे बड़े बड़े विद्वान और धनी इसको देखनेके लिये आने लगे। लोगोंका इससे प्रेम बढ़ता ही गया। राज्यकी ओरसे भी इसको सहायता मिली थी। इसमें प्रचलित की गई रीतिके ऊपर पत्रोंमें बड़ा वाद-विवाद भी होता था। राजनैतिक परिवर्तनोंके कारण राज्य-की आर्थिक सहायता बन्द हो गयी और उसके साथियोंमें कुछ मतभेद भी हो गया। इन दो कारणोंसे यह पाठशाला भी बंद कर देनी पड़ी। पेस्टलोज़ी यर्डून नगरको चला गया और वहाँपर बीस वर्षतक एक स्कूलका सञ्चालन करता रहा, जहाँपर उसकी पद्धतिके अनुकूल शिक्षा दी जाती थी।

उसकी पुस्तकें

सं० १८५८ में उसने "गेर्टूड अपने लड़कोंको कैसे शिक्षा देती है" नामक पुस्तक लिखी, जिसम उसने इस प्रश्नकी मीमांसा की कि कौनसा ज्ञान और व्यवहारोपयोगिनी शक्ति-यां लड़कोंकेलिये आवश्यक हैं और कैसे ये बातें लड़कोंको दी जासकती हैं या वे स्वयम् इनको प्राप्त करसकते हैं। पेस्ट-लोज़ीके आदेशानुसार उसके मित्रोंने एक दो और पुस्तकें लिखी थीं।

यर्डूनकी पाठशाला

बुर्गडोर्फसे चले आनेके बाद पेस्टलोज़ीने यर्डून नगर-में अपने सिद्धान्तोंके अनुसार स० १८६२ में एक पाठशाला खोली। यहांपर पहिलेसे भी अधिक शिक्षण शास्त्रके तत्वोंका ज्ञान प्राप्तकरनेके लिये यूरोपके भिन्न भिन्न देशोंसे अध्यापक

भेजे जाते थे। चारों ओर पेस्टलोज़ीका नाम हो गया था। वहांपर शिक्षाकी व्यावहारिक रीतियोंके सुधारनेके अभिप्रायसे नए प्रकारोंका अनुभव भी किया जाता था। विद्यार्थियोंकी संख्या खूब बढ़ गयी। शिक्षासम्बन्धी पुस्तकों और विवादास्पद लेखोंका प्रकाशन भी किया जाता था। सं० १८६६ में पेस्टलोज़ीके स्कूल में १५ अध्यापक और १६५ विद्यार्थी थे जो यूरोप और अमरीकाके भिन्न भिन्न देशोंसे आये थे। शिक्षा प्राप्त करनेकी रीतिको सीखनेके लिये भी १५ वयस्क अध्यापक इस पाठशालामें थे। पर इस वृद्धिके साथ साथ अवनतिके चिह्न भी दिखलाई पड़ने लगे। पेस्टलोज़ी प्रबन्ध करनेमें कभी कुशल नहीं था। इसी बीचमें उसकी पत्नीका देहान्त हो गया जिससे उसको बड़ा शोक हुआ। अब वह बुड्ढा भी हो गया, उसकी शक्तियोंका ह्रास हो चला। जिस सुधारके बेड़ेका सञ्चालन उसने इतने दिनोंतक किया था उसका काम उसकी शक्तियोंके बाहर था। उसकी उम्र ६० वर्षकी हो चली। उसके कार्यकर्त्ताओंमें भी फूट हो गयी। इन सब कारणोंसे सं० १८८२ में उसने इस संस्थाको तोड़ डाला। वह अपने पूर्व स्थान निवहाफको चला गया जहांपर उसका पौत्र रहता था। सं० १८८४ में उसका शरीरान्त हो गया।

ऐसे बड़े शिक्षण सुधारकने अपने देश और मनुष्य जातिके उपकारमें अपना सारा जीवन व्यतीत किया। उसकी शिक्षण पद्धतिने शिक्षाकी काया पलट दी है। उसका धैर्य प्रशंसनीय और परिश्रम अप्रतिहत था। उसकी सर्वजन-हितैषिताकी कोई सीमा ही नहीं थी। वह बड़ा ही निर्लोभी, धर्मनिष्ठ और दृढ़व्रती था। शिक्षणशास्त्रमें पेस्टलोज़ीका नाम अमर हो गया है।

पेस्टलोज़ीकी शिक्षण पद्धति

पेस्टलोज़ीका जीवनचरित पढ़नेके बाद हमको उसके निकाले हुए शिक्षण सिद्धान्तोंके समझनेमें कुछ कठिनता न मालूम होगी। शिक्षा-संसारमें जो काम उसने किये हैं, वे बड़े व्यापक हैं। शिक्षणशास्त्रमें उसने जो सबसे बड़े महत्वका परिवर्तन किया है वह शिक्षाका उद्देश है। उसने शिक्षाके उद्देशको समूल बदल दिया। उसके पहिले मनुष्योंका पक्का विश्वास था, और अब भी बहुत मनुष्योंका है, कि मदरसेकी शिक्षाका मतलब ज्ञानसञ्चय है और केवल विद्याभ्यास करना है। शिक्षाके इसी मतलबको सिद्ध करनेकेलिये बालकोंको तोतेकी तरह व्याकरणके नियम रटने पड़ते थे और गणितके छोटे मोटे क़ायदे याद करनेकेलिये बतलाये जाते थे। इसी प्रकार उनको विद्योपार्जन करना पड़ता था। पर इसके बिल्कुल विपरीत पेस्टलोज़ीने शिक्षाका उद्देश निर्धारित किया है। उसका कहना है कि शिक्षाका उद्देश "विकास" होना चाहिए। दोनों प्रणालियोंमें सबसे बड़ा अन्तर यही है।

प्रायः यह सर्वसम्मत बात है कि पहिले पहल रूसोने शिक्षामें स्वाभाविकताके सिद्धान्तोंका बीजारोपण किया था। शिक्षामें उसने स्वाभाविकताकी शरण ली थी। एक प्रकारसे पेस्टलोज़ीने इसी "स्वाभाविकता" का अनुसरण किया। अधिकांश पेस्टलोज़ीकी शिक्षण पद्धति इसी स्वाभाविकताकी अनुगामिनी है। इस बातका जांच करना आवश्यक है कि कहाँतक पेस्टलोज़ीके शिक्षण सिद्धान्त इस स्वाभाविकताके सिद्धान्तोंके प्रतिबिम्ब हैं। पेस्टलोज़ीने शिक्षाका जो

उद्देश बतलाया है, उसके जानलेनेसे इस बातके समझनेमें बड़ी सुगमता हो जायगी। पेस्टलोज़ीने अपनी "सन्यासीके सायंकालका समय" नामक पुस्तकमें लिखा है कि जितनी भी लाभदायिनी शक्तियां मनुष्योंको मिली हैं वे न तो मनुष्यके उद्योगके फल हैं और न आकस्मिक हैं, किन्तु वे ईश्वरदत्त हैं और जिस क्रमको सृष्टिने निर्धारित किया है उसीके अनुसार शिक्षा होनी चाहिए। इसी बातकी सत्यताके स्पष्टीकरणकेलिये वह अपनी पुस्तकोंमें बराबर बालकके विकास और पेड़ या पशुकी स्वाभाविक वृद्धिका सादृश्य दिखलाता है। पेड़की उपमा उसके इस बातको बहुत साफ कर देती है। पृथ्वीमें एक छोटा बीज बोया जाता है पर उसमें उसके भावी आकार और क़दका नक़शा मौजूद होता है। यदि उसको पानी और अच्छी खाद मिलती जाय तो उससे अङ्कुर निकलेंगे और कुछ दिनोंमें वह तना, शाखाओं, पत्तियों, फूलों और फलोंसे सुसज्जित दिखलाई पड़ेगा। तमाम पेड़में वृद्धिकी अटूट शृंखला वर्तमान है। उसका हरएक अवयव अपने पूर्ण रूपमें है। इसका यह रूप बीजके अन्तर्गत था। मनुष्य भी बिलकुल पेड़के सदृश है। नवजात शिशुमें वे सब शक्तियां वर्तमान हैं जो आगे चलकर जीवनमें फूलेंगी और फलेंगी। समय पाकर बच्चेके शरीरके भिन्न भिन्न अवयव और मानसिक शक्तियां हृष्टपुष्ट हो जाती हैं। उनके आकार सुडौल होते हैं और हरएक अवयव दूसरेसे मेल खाता है। पेस्टलोज़ीकी यह उपमा बहुत ही मनोहारिणी और हृदयग्राहिणी है।

पेस्टलोज़ीने शिक्षाकी जो परिभाषा दी है उसमें रूसोके नैसर्गिकताकी गन्ध भरी है। मानवी शक्तियों और मनोभावोंका विकास करना ही शिक्षाका काम होना चाहिए।

यह विकास स्वाभाविक, उन्नतशील और अविरुद्ध होना चाहिए। बालकको जिन ज्ञानविषयोंका अभ्यास करना है, उनमेंसे हरएकको कुछ विशेष विशेष खण्डोंमें विभक्त करना चाहिए। पेस्टलोज़ीका मत है कि बच्चेकी वृद्धिके अनुसार इनका अभ्यास कराना चाहिए। जैसे जैसे बच्चेकी मानसिक शक्तियाँ बढ़ती जाती हैं, वैसा वैसा शिक्षाका क्रम और तरीक़ा भी होना चाहिए। मानसिक शक्तियोंका विकास प्राकृतिक विषयोंके अनुसार होता है। जिस समय उनका वृद्धिके दिन होते हैं, उस समय बच्चेकी प्रत्येक शक्तिकेलिये एक विशेष प्रकारके ज्ञानकी आवश्यकता होती है। जिन नियमोंके अनुसार बच्चेकी शक्तियोंकी वृद्धि होती है, उन्हींके अनुसार शिक्षा भी देनी चाहिए। शुरूमें बच्चेकी शक्तियाँ परिपक्व नहीं होतीं हैं, इसलिये उसको ज्ञानविषयोंकी केवल मोटी मोटी और सरल बातोंका अभ्यास कराना चाहिए। ज्ञानोन्नतिको विकासके समानान्तर बनाना चाहिए। यही प्राकृतिक नियम है। इसके विरुद्ध चलना अस्वाभाविक है और शिक्षाके उद्देशकी पूर्ति भी नहीं हो सकती है। जिस प्रकारकी शिक्षाप्रणाली परम्परासे चली आती है, उससे इसका मतलब नहीं सिद्ध हो सकता। इस प्राचीन शिक्षाप्रणालीमें बहुतसे दोष हैं। यह प्रणाली निरी नियमात्मक है। पेस्टलोज़ीके समयमें जिन तरीक़ोंके अनुकूल शिक्षा दी जाती थी, उनमें बच्चेके विकासका ख़याल नहीं किया जाता था। इन तरीक़ोंके अवलम्बसे बच्चोंको शब्दोंको पढ़नेकी शक्ति, गिनती और पहाड़ोंका बुद्धिविषयक ज्ञान और भाषाका नियमात्मक अभ्यास ही जाया करता था।

बच्चोंकी स्वाभाविक वृद्धिकी अवहेलना की जाती है
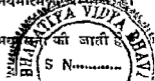
शब्दार्थकी कुछ परवाह न करके अध्यापक शब्दोंके शुद्ध उच्चारणके ऊपर अधिक जोर देते थे। पदार्थोंको न देखकर बच्चे उनका वृत्तान्त पढ़ते थे। नियमोंकी पाबन्दी करके उस समय शिक्षा देनेकी चाल थी। उपपत्ति न बतला कर सिद्धान्त पढ़ाये जाते थे। पेस्टलोज़ीने अपनी पुस्तकोंमें लिखा है कि जिस प्रकारके विद्यालय शिक्षा देनेकेलिये पर्याप्त समझे जाते हैं, उनमें बच्चोंकी सारी शक्तियां कुचली जाती हैं और बच्चोंको जो ज्ञान अनुभवसे प्राप्त होता है उसके ऊपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। उठते बैठते प्रकृति बच्चोंको ज्ञान देती हैं, पर इस ज्ञानकी पूरी अवज्ञा की जाती है। ये विद्यालय बच्चोंकी स्वाभाविक शक्तियोंके नष्ट करनेकी कलें हैं। पाठशाला जानेके पहिले पांच बर्षतक छोटे बच्चे जीवनके इन्द्रियजन्य सुख भोगते हैं किन्तु उसके बाद सृष्टिके सौन्दर्यकी हवा तक उनको नहीं छू जाती। उनकी आंखोंके सामनेसे हम लोग सृष्टिको गायब कर देते हैं। जबरदस्ती हम उनकी स्वाभाविक चपलताको रोकते हैं और उनकी स्वतन्त्रतासे उत्पन्न हुए सब तरीक़ोंको दबा देते हैं। भेड़ी और बकरियोंकी तरह हम उन छोटे छोटे बच्चोंको बदबूदार कमरोंमें बन्द कर देते हैं। वर्षोंतक उनको अक्षराभ्यास कराया जाता है जिससे उनको कुछ भी आनन्द नहीं मिलता और जो बिल्कुल अस्वाभाविक है। मदरसोंमें जिस तरीक़ेके अनुसार शिक्षा दी जाती है, बच्चोंकी पूर्व अवस्थाके सामने वह पागलपनेकी बात समझी जा सकती है। पेस्टलोज़ीने प्रचलित शिक्षाप्रणालीके इन दोषोंकी ओर लोगोंका ध्यान आकृष्ट किया और सुधारकी आवश्यकता बतलायी।

पेस्टलोज़ीके बर्षों पहिले रूसोने इस सदोष शिक्षाप्रणा-

सोके ऊपर आघात किया था। उसकी उसने तीव्र आलोचना की थी। सृष्टिके क्रमोंके अनुसार बच्चेकी शिक्षाका क्रम होना चाहिए। प्रकृतिके अनुकूल बच्चेकी शिक्षाका प्रबन्ध करनेकी आवश्यकता रूसोने बतलायी। उस ज़मानेके पाठशालाओंमें प्राकृतिक शिक्षाका नितान्त अभाव था। इस अभावकी ओर भी रूसोने मनुष्योंके मनोंको आकर्षित किया था। पर इस विषयमें उसने जो कुछ लिखा वह केवल निषेधात्मक है। किस प्रकार शिक्षाका पुनरुद्धार हो सकता है, इस ओर उसने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला। उसने एकदम समाज और सभ्यताको छोड़ देनेकी सलाह दी। प्रकृतिकी ही उपासना करनेकेलिये उसने आज्ञा दी है। उसकी शिक्षणपद्धतिका सबसे बड़ा दोष यह है कि उसमें शिक्षाका साङ्गोपाङ्ग विधान नहीं अर्थात् उसने मदरसोंकी आवश्यकताओंके ऊपर अपनी शिक्षणपद्धतिके सिद्धान्तोंको घटित नहीं किया है। हां अलबत्ते वह बच्चोंको एकान्तमें रखनेका परामर्श देता है। पेस्टलोज़ीने रूसोकी स्वाभाविकताके सिद्धान्तोंको लेकर सब बालकोंके ऊपर, चाहे जिस अवस्थामें वे हों और चाहे जैसी उनकी शक्तियां हों, घटित करनेकी कोशिश की है। रूसोकी शिक्षण पद्धतिमें केवल उच्च कुलके बालकोंकी शिक्षाका निरूपण किया गया है, और गरीबोंके लडकोंकी शिक्षाकी ओर उदासीनता दिखलाई गयी है। इसके विपरीत पेस्टलोज़ीको दीन किसानोंकी अकथनीय दशाकी चिन्ता व्यथित किये रहती थी। उसको हमेशा उनके दुःखोंका ख़्याल बना रहता था। पेस्टलोज़ीने कहा है कि किसानोंकी निर्धनता दूर की जा सकती है। उनके दुःखदर्दोंका मूलोच्छेदन हो सकता है और मानवी समाजका सुधार हो सकता है। निर्धनता और दुर्गतिको रामबाण

औषधि मानसिक और नैतिक विकास है। मानसिक और नैतिक विकास ही मनुष्योंको उन्नत कर सकता है। इसीमें उनकी भलाई है, पेस्टलोज़ीकी ऐसी धारणा थी। सर्वजन-हितैषितासे प्रेरित होकर पेस्टलोज़ीने सर्वसाधारणकी शिक्षाका समर्थन किया। सब मनुष्योंको शिक्षाकी परमावश्यकता है चाहे जैसी उनकी सामाजिक अवस्था हो और चाहे जो व्यवसाय वे करना चाहें, इस सिद्धान्तका वह पक्षपाती था।

ज्योंही शिक्षामें विकासका भाव आता है त्योंही सहसा जिन बालकोंका विकास होना है उनका भी ख़याल आ जाता है। शिक्षाके उद्देशमें परिवर्तन होते ही और भी परिवर्तन करने पड़ते हैं। शिक्षामें विकास भावके आते ही यह परिणाम हुआ कि अध्यापक बालकोंके ऊपर अधिक ध्यान देने लगे हैं। वे समझने लगे हैं कि छोटे बच्चे फूलोंकी कलियोंके समान हैं। जिस प्रकार फूलोंकी कलियाँ खिलकर फूल हो जायँगी, उसी प्रकार छोटे बच्चे भी विकसित हो कर शक्तिवान हो जायँगे। शिक्षामें बच्चोंकी शक्तियोंका विकास किया जाता है। शारीरिक और मानसिक शिक्षाका विधान वह इसलिये करता है कि मनुष्य अपनी ईश्वरदत्त शक्तियोंका स्वतन्त्रतापूर्वक पूरा पूरा उपयोग कर सकें और वे इन शक्तियोंको अपने जीवनोद्देशके पूर्ण रूपमें सफल करनेमें प्रेरित कर सकें क्योंकि सर्वव्यापी परमात्माने उनको साधन मात्र बनाया है। यही कारण है कि पेस्टलोज़ीने सर्वसाधारण शिक्षाका समर्थन किया। इस उच्च उद्देशकी पूर्त्तिकेलिये बचपनसे ही बालकोंकी समुचित शिक्षाका प्रबन्ध करना चाहिए। इसीलिये उसने माताओंको बालकोंका शिक्षक माना है। उन्हींके हाथोंमें सन्तानोंकी भावी उन्नति है। यदि वे चाहें तो उनकी सन्तानें अच्छे

गुणोंसे सम्पन्न हो सकती हैं। ईश्वरने उनको इसी कामके सम्पादन करनेकेलिये बनाया है। ईश्वरने छोटे बालकोंको सब शक्तियां, जिनके होनेकी सम्भावना हमारे शरीरमें हो सकती है, दी हैं। उनका अच्छा या बुरा उपयोग करना माताकी ही शिक्षाके ऊपर निर्भर है। शिक्षाकी पहिली सीढ़ी माताका प्रेम है और इसीसे प्रभावान्वित होकर बच्चेको सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरसे प्रेम और उसको विश्वास करना आवेगा।

इस विकास भावके अनुसार, जिसको पेस्टेलोज़ीकी शिक्षण पद्धतिका मूलमन्त्र कहना अनुचित न होगा, ज्ञानोपार्जन करना और विशेष प्रकारके व्यवसायों और कला कौशलकी शिक्षाका दर्जा कम महत्वका है। जीवनकी ईश्वरदत्त शक्तियोंको पूर्ण रूपमें सार्थक करना ही शिक्षाका मुख्य प्रयोजन है। मनुष्योंके मनमें यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि पेस्टलोज़ीकी शिक्षण पद्धतिमें अध्यापकका काम नहीं रह जाता पर बात ऐसी नहीं है। उसकी पद्धतिमें इस बातके ऊपर पूरा ध्यान दिया गया है। ईश्वरदत्त शक्तियोंको सार्थक करनेमें अध्यापककी सहायताकी उपेक्षा नहीं की गयी। अध्यापकका काम निरन्तर परोपकारशील अध्यक्षता है। किस प्रकार बालक अपनी स्वाभाविक शक्तियोंका निष्कर्षण कर सकते हैं और किस प्रकार उनका विकसित होना सम्भव है— ये ही शिक्षकके काम हैं। बच्चोंकी मानसिक शक्तियोंकी सञ्चालनाकेलिये उचित साधन उपस्थित करना शिक्षकका कर्त्तव्य है। इस अध्यक्षतामें बड़ी चतुराई और परिश्रमकी आवश्यकता होती है। यदि बच्चोंको ऐसी अध्यक्षता न मिलेगी, तो उनकी बुद्धि अवश्य कुण्ठित हो जायगी। जो बातें प्रति दिन बच्चोंको सिखलाई जावें वे उनकी शक्तियोंके

विकासके योग्य होनी चाहिएं और योग्य रीतिसे ही सिखलानी चाहिए और शिक्षामें योग्य समय, योग्य रीति और योग्य अवकाशका हमेशा ख़्याल रखना चाहिए। इन्हीं बातोंमें अध्यापककी आवश्यकता प्रतीत होती है।

पेस्टलोज़ीका मत है कि शिक्षाका मुख्य नियम शिक्षण नहीं है अर्थात् विद्याभ्यास कराना मात्र नहीं है किन्तु प्रेम और सहानुभूति हैं। मनन और कार्य करनेके पूर्व बालक स्नेह और विश्वास करता है। जिस प्रकार पेड़की जड़ें पेड़को सम्भाले रहती हैं और उसको गिरनेसे बचाती हैं उसी प्रकार मनुष्यके श्रद्धा और प्रेमके भाव उसको इस संसारमें कायम रखते हैं और उसको पतित होनेसे बचाते हैं। इस कथनमें सत्यता कूट कूट कर भरी हुई है क्योंकि संसारमें देखा जाता है कि यदि हमारे मनोविकारों और हृदयोंमें निर्बलता है तो हमसे पापोंके होनेकी अधिक सम्भावना है चाहे हमारी बुद्धि कितनी उन्नत क्यों न हो। हमको मनोविकारों और हृदयोंके द्वारा ही बुरे कामोंमें प्रेरणा मिलती है। ये ही हमारी अवनतिके कारण बन सकते हैं। यदि एक बालकको केवल बुद्धिविषयक शिक्षा ही दी जावे जिसके ये भाव शुद्ध नहीं हैं, तो वह शिक्षा उसके पतनका कारण बन जायगी। इसीलिये यद्यपि पेस्टलोज़ीने मानसिक शिक्षा (विकास) के महत्त्वको स्वीकार किया है तथापि उसने अपने प्रणालीमें नैतिक और धार्मिक शिक्षाको सबसे पहिला स्थान दिया है। उसकी सम्मतिमें नैतिक और धार्मिक शिक्षा एक ही हैं। इन दो प्रकारकी शिक्षाओंमें उसने कोई भेद नहीं माना है। उस ज़मानेकी शिक्षा प्रणालीसे, जिसमें धार्मिक शिक्षाका अभाव था, पेस्टलोज़ी असन्तुष्ट था क्योंकि उसने एक स्थलपर लिखा है कि मनुष्य

केवल रोटी ही खाकर ज़िन्दा नहीं रह सकता। प्रत्येक बालकको धार्मिक शिक्षाकी आवश्यकता है। प्रत्येक बालकको बहुत ही सीधी सादी भाषामें श्रद्धा और प्रेमके साथ, ईश्वरसे प्रार्थना करनेकी बड़ी जरूरत है। आजकल भारतवर्षमें जो धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध है, वह नहीं के बराबर है। अन्य प्रकारकी शिक्षाओंके साथ साथ धार्मिक शिक्षा देना बहुत ही आवश्यक है। जो सर्वसाधारण शिक्षा दी जाय, उसका सार पेस्टलोजीने इन शब्दोंमें बतलाया है कि बालकको प्रार्थना, मनन और हाथसे काम करनेका अभ्यास करनेमें उसको आधेसे अधिक शिक्षा हो जाती है। बालककी शिक्षाके येही प्रधान अङ्ग हैं। सबसे पहिले बालकको श्रद्धा और प्रेमपूर्वक प्रार्थना करना बतलाना चाहिए। उसके बाद बालकको मनन करना चाहिए। मनन करनेका क्या अभिप्राय है यह आगे बतलाया जाता है।

उसका शिक्षण तरीक़ा

क्योंकि मनन करनेके विषयमें एक शंकाका उत्थान हो सकता है कि क्या बालकोंको मनन ही करना चाहिए और उनको विद्याभ्यास न करना चाहिए। यह शंका अध्यापकोंकी ओरसे उपस्थित की जा सकती है, पर पेस्टलोजी इसके उत्तर देनेमें तैयार है। पेस्टलोज़ीकी शिक्षण पद्धतिमें विद्याभ्यासका पूरा प्रबन्ध है। लाकके समान वह विद्याभ्यासको तुच्छ और कम कीमतका नहीं समझता है। हां, इतना अवश्य है कि जैसा "विद्योपार्जन" का अर्थ शिक्षक करते हैं वैसा अर्थ वह नहीं ग्रहण करता। विद्योपार्जनके अर्थ में भेद अवश्य है। जैसा पहिले भी लिखा जा चुका है पेस्टलोज़ी रूसोके

प्रवर्तित किये हुए स्वाभाविकताके सिद्धान्तोंका अनन्यभक्त था। उसने रूसोकी लिखी हुई शिक्षा विषयक विख्यात पुस्तक "एमिली" को खूब पढ़ा था और उसकी कई बातोंकी सत्यतामें उसका दृढ़ विश्वास भी था। इसीके प्रभावसे पेस्टलोज़ीके मनमें शिक्षकोंके प्यारे शब्द "विद्योपार्जन"के प्रति घृणासी उत्पन्न हो गयी थी। पर सर्वसाधारणकेलिए पेस्टलोज़ीको शिक्षाका प्रचार करना अभीष्ट था। इस प्रचारकी सफलताकेलिये उसको शिक्षासम्बन्धी पाठ्य विषयोंको संगठित करना भी योग्य था क्योंकि रूसोकी तरह वह निषेधात्मक शिक्षाका कोरा उपासक नहीं था। वह विधानात्मक सुधारक था। रूसोकी इस बातसे वह बिल्कुल सहमत नहीं था कि बालकके शुरूके बारह वर्ष "समयको खो देनेमें" व्यतीत करने चाहिएं अर्थात् बारह वर्षतक बालकोंको कुछ न पढ़ना चाहिए और उनमें किसी प्रकारकी आदत भी न आने देना चाहिए। यह तो है रूसोकी राय। पेस्टलोज़ीका मत है कि बालकोंको पढ़ना ज़रूर चाहिए किन्तु उनको इस प्रकारसे विद्याभ्यास करना चाहिए जिसमें उनकी मानसिक शक्तियोंका पूर्ण विकास हो सके। इस उद्देशकी पूर्तिकेलिये पेस्टलोज़ीको यह बात कहनी पड़ी है, जिसको वह शिक्षण शास्त्रमें एक बड़ा आविष्कार समझता है, कि शिक्षणका आधार "निरीक्षण" होना चाहिए अर्थात् प्रतिभापर शिक्षण को अवलम्बित करना चाहिए। इस प्रतिभाके * द्वारा

* पेस्टलोज़ीने शिक्षणके आधारकेलिये आंसचाउउग (Anschauung) शब्दका प्रयोग किया है। इस शब्दसे पेस्टलोज़ीने उस मानसिक शक्तिका निर्देश किया है जिसके द्वारा उद्योग या दूसरी शक्तिकी सहायताके बिना हमको किसी वस्तुका सहज ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह प्रत्यक्ष अन्तर्बोध है।

शिक्षाका काम सरल हो जाता है। (प्रतिभा मनकी वह अवस्था है जिससे हमको किसी वस्तुका सहज ज्ञान प्राप्त होता है। जिस शक्तिसे वस्तुका ज्ञान इन्द्रियों, विवेक, बुद्धि या अन्तःकरणके द्वारा मनको मिलता है, उसी शक्तिका नाम प्रतिभा है।)

इस सहजज्ञेय तरीक़ेके प्रयोगसे मनमें सत्यताकेलिये एक प्रकारकी स्फूर्ति उत्पन्न होती है। यह सहजज्ञेय तरीक़ा अपनी जिज्ञासा वृत्तिको तृप्त करनेमें विद्यार्थीको प्रवृत्त कर देता है। पढ़ाते समय यदि हम इस सहजज्ञेय तरीक़ेको काममें लावें, तो ज्ञानोपार्जनमें विद्यार्थीको भी सहायता मिल सकती है। विद्यार्थीकी सहायता मिलते ही हमारी शिक्षणकी कठिनता सब दूर हो सकती है। विद्यार्थीको इससे आनन्द भी मिलेगा।

इस बातके माननेमें किसीको भी आपत्ति नहीं हो सकती कि हमारे शरीर और मनमें ऐसी अनेक शक्तियां होती हैं जिनके द्वारा हमको सत् और असत्का विवेक प्राप्त होता है। इन्हीं शक्तियोंके आधारपर शिक्षाकी सञ्चालना पैस्टलोज़ीको मान्य है। पैस्टलोज़ीके एक शताब्दी पहिले लाकने भी इसी प्रतिभा शक्तिका उल्लेख किया था। लाकने ज्ञानको मनका आन्तरिक प्रत्यक्षीकरण बतलाया था। लाक एक स्थलपर लिखते हैं कि "जानना ही देखना है" अर्थात् जिस बातको हम अच्छी तरह जानते हैं उसको हमने कभी देखा भी होगा यह भी आवश्यक है। अन्यथा उसका ज्ञान हमको प्राप्त नहीं हो सकता

हम उसी ज्ञानको प्रतिभाद्वारा उपलब्ध कर सकते हैं जिसका चित्र मनके सामने साक्षात्कार हो जाता है। उस ज्ञानके उपलब्ध करनेमें मनको न तो उपपत्तिकी जरूरत होती है, न किसी अन्वेषणकी और न किसी प्रमाणकी।

और यदि यह बात सत्य है तो दूसरेकी आंखोंसे देखी
वस्तुका ज्ञान अपनी आँखोंसे देखी हुई उसी वस्तुके ज्ञानके
बराबरी कदापि नहीं कर सकता। इसके विपरीत कहना
पागलपनेकी बात है। जिस बातको एक मनुष्यने स्वयं
नहीं देखा, उसका पूरा ज्ञान उस मनुष्यको कभी नहीं मिल
सकता, चाहे वह कितना ही कहे कि उसने उसको समझ
लिया है।

शिक्षण सिद्धान्तोंमें पेस्टलोज़ी और लाकमें इतनी समा-
नता है किन्तु शिक्षण तरीक़ेमें उनमें कुछ भी सादृश्य नहीं।
लाक दार्शनिक विचारोंमें इतना फँसा रहता था कि उठते बैठते
उसने बालकोंकी बुद्धि विषयक शक्तिकी अवज्ञा की है। उसकी
यह धारणा थी कि बालक स्वयम् किसी वस्तुको नहीं देख
सकता अर्थात् समझ सकता है। जबतक बालकोंमें तर्कना
बुद्धिका प्रादुर्भाव नहीं होता है तब तक चाहे जो कुछ उनको
पढ़ाया जाय इसकी उसने परवाह नहीं की। यदि अध्यापक चाहे,
तो उनको सभ्यजनोचित शिक्षा दी जा सकती है। उसके अनु-
गामी रूसोने मदरसेकी नियमात्मक शिक्षाको तिलाञ्जली दे
दी। उसने पुराने प्रकारकी पढ़ाईको बिलकुल त्याज्य माना
और लड़कोंको बारह वर्षतक कुछ नहीं पढ़ानेकी सलाह दी।
इसके बाद पेस्टलोज़ीका उदय हुआ। पेस्टलोज़ीका कहना
है कि चाहे जिस अवस्थामें बालककी शिक्षा आरम्भ की जाय
उस अवस्थामें बालकका मन ज्ञानशून्य नहीं होगा किन्तु
उस समय उसको किसी न किसी प्रकारके ज्ञानकी आवश्य
कता होगी। जन्मदिनसे ही बालकके ज्ञानकी नदी अविच्छिन्न
रूपमें बहने लगती है। जीवन पर्यन्त इस नदीका प्रवाह जारी
रहता है। निरन्तर बालकको ज्ञान प्राप्त होता रहता है।

जिस दिनसे वह सूर्यकी रोशनीको देखता है उसी दिनसे उसके ज्ञानका आरम्भ होता है। पर यह जानना बाक़ी है कि किस प्रकार बालकको ज्ञानप्राप्ति होती है। यदि एक बालकमें इतनी योग्यता आजाय कि वह उन शब्दोंको दोहरा सके जो दूसरे मनुष्योंके विचारों, मनोभावों और अनुभवोंको प्रकाशित करते हैं तो हम इस योग्यताको वास्तविक शिक्षा नहीं कह सकते। जो शिक्षा बालकोंको निजी अनुभवों और मनोभावोंसे होती है (और उन विचारोंसे भी जिनकी उत्पत्ति इन अनुभवों और मनोभावोंसे होती है) वही वास्तविक शिक्षा है, अन्य सब विडम्बना और शिक्षाभास मात्र है।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि पेस्टलोज़ीने शिक्षामें तीन बातोंका समावेश किया था अर्थात् बालकोंको प्रार्थना, मनन और हाथसे काम करना सीखना। दो बातोंका उल्लेख किया जा चुका है। तीसरी बात है हाथसे काम करना। पेस्टलोज़ीकी प्रतिपादित शिक्षण पद्धतिकी यह विशेषता है और उसके स्थापित किये हुए मदरसे इस विशेषताके प्रत्यक्ष उदाहरण थे। उसके मदरसेके विद्यार्थियोंको हस्तकुशल होना पड़ता था और उनको किसी न किसी प्रकारकी दस्तकारीका अभ्यास कराया जाता था। इसी तरह वह उनके अन्दर आत्मसम्मानके भाव उत्पन्न करता था। उसके मदरसोंमें लड़कोंके भविष्य जीवन और विद्यार्थी जीवनका कल्याणकारक सम्मेलन होता था। इस सम्मेलनका बहुत अच्छा परिणाम निकलता था। बालकोंको अपने भविष्यत्के व्यवसायसे घृणा नहीं होती थी किन्तु उनको कारीगरी और हस्तकौशल सम्मानसूचक मालूम होने लगते थे। आजकल भारतवर्षके पाठशालाओंमें हस्तकौशलके शिक्षाकी बड़ी आवश्यकता है। यहाँके पाठशा-

लाओंसे जो विद्यार्थी पढ़कर निकलते हैं उनको कारीगरी और दस्तकारीसे बेहद नफ़रत होती है पर उनको सेवावृत्तिसे प्रेम होता है। बहुतसे मनुष्य सर्वसाधारण शिक्षाका इसलिये विरोध करते हैं कि यदि छोटी जातियोंमें शिक्षाका प्रचार हो जायगा तो बढ़ई और लोहारगीरी आदि कौन करेगा। यह कथन सारगर्भित है। पर यदि यहाँके स्कूलोंमें हस्तकौशल आदिकी शिक्षा दी जाने लगे तो इस शंकाकी निवृत्ति अधिकांशमें हो जायगी और इसमेंसे लोहार, बढ़ई, धोबी भी बनकर निकलेंगे।

जिस प्रकारके शिक्षण तरीक़ाका निरूपण पेस्टलोज़ीने किया है, उसकी मुख्य मुख्य बातोंका सारांश नीचे लिखा जाता है। एक बड़े लेखक मार्फने पेस्टलोज़ीके जीवनचरित-में इस सारांशको दिया है। उसीका रूपान्तर यहांपर दिया जाता है।

(१) विद्योपार्जनका आधार विद्यार्थीका निजी अनुभव होना चाहिए अर्थात् लडकोंको जिन जिन बातोंका अनुभव हो उन्हीके ऊपर विद्यामन्दिरकी इमारत खड़ी करनी चाहिए।

(२) विद्यार्थी जिन बातोंका अनुभव और अवलोकन करता है, उनका सम्बन्ध भाषासे जोड़ देना चाहिए अर्थात् भाषासे उन्हीं बातोंका वर्णन करना चाहिए।

(३) विद्योपार्जनका समय, विवेक और आलोचना करने-का समय नहीं है।

(४) हरएक ज्ञानविषयमें सीधीसादी और सरल बातों-से शिक्षणका आरम्भ होना चाहिए। इन बातोंसे शुरु करके बच्चेकी बुद्धिके विकासके अनुसार शिक्षणको सिलसिलेवार जारी रखना चाहिए अर्थात् इसका क्रम और तरीक़ा मानसिक शक्तियोंके विकासके हिसाबसे होना चाहिए।

(५) जबतक ज्ञानविषयके किसी अंशको विद्यार्थीका चित्त बखूबी न ग्रहण कर ले अर्थात् जबतक वह अंश विद्यार्थीकी समझमें अच्छी तरह न आ जाय तबतक शिक्षकको दूसरी बातोंका अभ्यास न कराना चाहिए।

(६) विद्याभ्यासको विकासके क्रमका अनुसरण करना चाहिए। उसमें व्याख्यान देने, पढाने या बतलानेकी शैलीका अनुकरण करना ठीक नहीं अर्थात् मानसिक शक्तियोंके विकासको दृष्टिमें रखकर बच्चोंको आप ही आप ज्ञान प्राप्त करनेके योग्य बना देना शिक्षकका मुख्य काम है।

(७) शिक्षकको बच्चोंको व्यक्तित्व या सत्ताको पवित्र समझना चाहिए अर्थात् जो जो विशेषताएं एक बच्चेमें हों उनको शिक्षित करनेकेलिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। सब बालकोंको एकही प्रकारकी शिक्षा न देनी चाहिए।

(८) प्रारम्भिक शिक्षाका मुख्य उद्देश्य ज्ञानप्राप्ति या चातुर्य नहीं है किन्तु मानसिक शक्तियोंका विकास और उनको मजबूत करना ही है।

(९) ज्ञानसे आत्मिक बलकी और ज्ञानसञ्चयसे बुद्धिकी प्राप्ति होनी चाहिए।

(१०) शिक्षक और विद्यार्थीमें मित्रभाव होना चाहिए। शिक्षक और विद्यार्थीका मेलमिलाप स्नेहपर अवलम्बित होना चाहिए। मदरसासम्बन्धी मर्यादा, आचार और व्यवहारका आधार स्नेह होना चाहिए और उसका प्रबन्ध स्नेहके द्वारा करना चाहिए।

(११) शिक्षाके उद्देशके अनुकूल विद्याभ्यास कराना चाहिए अर्थात् ज्ञानप्राप्तिका अवलम्ब शक्तियोंका विकास होना चाहिए।

किया। इस तरह उसने हरएक ज्ञानविषयके तीन क्रम किये हैं—(१) विश्लेषण, (२) प्रतिभा और (३) व्यञ्जकता।

एनान्ज़, बुर्गडोर्फ और येर्डूनमें जो मदरसे उसने स्थापित किये थे उनमें उसने अपने शिक्षण तरीकाका प्रयोग किया था जिसमें उसको बड़ी सफलता प्राप्त हुई थी। इसी कारण संसारमें उसका नाम प्रख्यात हो गया। इस काममें उसके अनुयायियोंने भी बड़ी मदद की थी। स्कूलमें जितने साधारण विषयोंकी शिक्षा दी जाती है, उनको वह अपने तरीकेके अनुसार स्कूलोंमें पढ़ाता था। संक्षिप्त नियमोंको रटाकर वह भाषाकी शिक्षा नहीं देता था किन्तु पदार्थोंको प्रत्यक्ष दिखला कर भाषा पढ़ाई जाती थी। लड़कोंको उन पदार्थोंके विषयमें बातचीत करनी पड़ती थी। भाषा शिक्षाके पहिले लड़कोंको मनन करनेकी आदत डाली जाती थी। उसी प्रकार व्याकरण, पढ़ने, हिज्जे करने और निबन्ध लिखनके पहिले लड़कोंको बोलना सिखलाया जाता था। भाषा-शिक्षणमें ध्वनियोंका उच्चारण पहिले बतलाया जाता था। इनसे शब्दोंकी रचना की जाती थी और शब्दोंसे वाक्यरचना। जिस तरह भाषामें ध्वनियां बीजतत्त्व मानी जाती थीं उसी तरह अङ्कगणितमें गिनतीका दर्जा था। यहांपर भी प्रतिभा अर्थात् अन्तर्ज्ञानसे काम लिया जाता था। चीज़ोंको प्रत्यक्ष दिखलाकर गिनती और उसकी प्रारम्भिक बातें बच्चोंको सिखलाई जाती थीं। इसी अभिप्रायसे प्रेरित होकर उसने संख्या, भिन्न और मिश्रित भिन्नके सीखनेकेलिये चक्र तैयार किये थे। आकारके प्रारम्भिक तत्वोंकी सहायतासे चित्रविद्या, लेखन, कल्पनात्मक और प्रयोगात्मक रेखागणितकी शिक्षा दी जाती थी। भूगोल-विद्या, प्रकृति और इतिहासकी शिक्षाकेलिये पहिले आस

पासकी चीज़ोंका हाल जानना पड़ता था। इन चीज़ोंके ज्ञान होनेके बाद मनुष्य और संसारका ज्ञान कराया जाता था। पेस्टलोज़ीने संगीत विद्याको भी अपनी पद्धतिमें सम्मिलित किया था। नैतिक और धार्मिक शिक्षा जीवनकी घटनाओं और उदाहरणोंद्वारा दी जाती थी।

आजकल लोगोंने समझ रक्खा है कि पेस्टलोज़ीकी शिक्षण पद्धतिमें बुद्धि विकासके साथ साथ लड़कोंकी खेलकूदकी इच्छा भी खूब तृप्त की जाती है। वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। खेलकूद और मनोरञ्जकताके वेषमें शिक्षा देनेका पेस्टलोज़ी विरोधी था। वह यह नहीं चाहता था कि विद्याभ्यासके समय लड़कोंके मनमें खेलकूदका ख्याल आवे। खेलकूदका विचार आते ही विद्याप्राप्तिमें लड़के असावधानी करने लगजाते हैं। परिश्रम और उद्योगसे उनको नफ़रत होने लगती है। यदि पढ़नेके समय लड़के पाठमें ध्यान न दें और उनका मन उचटने लगे तो इसमें अध्यापकका ही दोष है और इस त्रुटिको दूर करनेकेलिये अध्यापकको सचेत होना चाहिए।

पेस्टलोज़ीकी इस शिक्षण पद्धतिमें जो शासनका भाव वर्तमान था उसमें नरमी बहुत थी। वह घरकी तरह स्कूलका सञ्चालन चाहता था जहांपर दया और प्रेम ही, न कि भय, अच्छे कामोंको करनेके प्रेरक थे, जहांपर विद्यार्थी हमेशा मनोरञ्जक कामोंमें लगे रहते थे और उनके शारीरिक, मानसिक और नैतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके ऊपर पूरा ध्यान दिया जाता था, वहांपर दण्डकी आवश्यकता ही नहीं अनुभव की जा सकती थी। यद्यपि वह दण्डका पक्षपाती न था, तथापि वह उसको बिल्कुल त्याज्य भी नहीं समझता था।

उसकी शिक्षण पद्धतिकी आलोचना ।

आजकल पाश्चात्यदेशोंके शिक्षासंसारमें पेस्टलोज़ीने बड़ी ख्याति प्राप्त की है। उसके नामसे बहुतसी शिक्षण पद्धतियाँ जारी की गयी हैं। यह उसके अनन्य भक्तों और प्रशंसकोंका कार्य है। न्यायपूर्वक देखा जाय तो उसके सिद्धान्त बहुत मौलिक नहीं हैं और न अच्छी तरह उनका प्रयोग ही किया गया है और जितने लाभ उसकी पद्धतिसे सोचे गये थे उनकी प्राप्ति भी नहीं हुई। हां, उसको इतनी श्रेष्ठता अवश्य मिलनी चाहिए कि उसने रूसोके सूक्ष्म और व्यापक सिद्धान्तोंको व्यावहारिक और विधानात्मक रूप दिया। पर कभी कभी इसमें भी परस्पर विरोध और व्यवहारज्ञानशून्यता पायी जाती है।

कभी कभी उसने स्वयम् अपने सिद्धान्तोंके विरुद्ध आचरण किया है। यद्यपि वह कण्ठ करने वाली तरकीबके विरुद्ध था तथापि उसने भाषा, शिक्षा, हिज्जोंके पाठ, भूगोल-विद्या, इतिहास और प्रकृतिपाठमें इस तरकीबका अनुसरण किया है।

पेस्टलोज़ीके कामोंमें इतनी त्रुटियां और परस्पर विरोध होते हुए भी उसने शिक्षा और समाजकेलिये बड़ा उपकार किया है। उसीकी बदौलत अर्वाचीन शिक्षण-शास्त्रका निर्माण हुआ है। उसके सिद्धान्तोंने मदरसोंकी तत्कालीन अवस्थाका बड़ा सुधार किया। उसने शिक्षाको सब प्रकारके दुःखकी रामबाण औषधि माना है। यह उसीके उदाहरणका परिणाम है कि आजकल यूरोपमें हस्तकौशल और कारीगरी सिखलानेकेलिये हज़ारों संस्थाएँ खुलगयी हैं और खुलती जा रही

हैं। उसके स्वाभाविक तरीकेने पुराने ढर्रेका नियामक नियमोंका स्थान लेलिया है। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टिसे उसके सिद्धान्तोंमें अनेक दोष हैं तथापि उसके भाव बहुतही प्रशंसनीय हैं। आजकल जितनी भी शिक्षण पद्धतियां यूरोप और अमरीकामें प्रवर्तित की गयी हैं, उनका आदिम स्रोत पेस्टलोजीके भावोंमें हैं। पेस्टलोजीकी शिक्षणपद्धति ही उनका पथप्रदर्शक है।

•:—:•

हर्बार्ट

अनेक विद्वानोंका मत है कि जिन महान पुरुषोंके जीवन-चरितसे इतिहास लिखनेकी सामग्री मिलती है और जिनके जन्म या आगमनसे संसारमें प्रकाशका भी आगमन होता है उनके अक्षुण्य कीर्तिके उच्च शिखरपर पहुँचनेका मुख्य कारण समय है। यदि समय उनके अनुकूल न हो तो उनको विख्यात होनेका अवसर कम प्राप्त होगा। हमारे शास्त्र तो इसी मानके पोषक हैं। जिस शिक्षण सुधारकके जीवन-चरितका उल्लेख करनेका मेरा अभिप्राय यहांपर है, उनकी प्रसिद्धिका कारण समय ही है। यूरोपमें अट्ठारहवीं शताब्दी नए विचारोंके उत्कर्षकेलिये प्रसिद्ध है। उस समय यूरोपमें सर्वसाधारणजनकी आर्थिक दशा बड़ी शोचनीय थी। इसी शोचनीय दशासे प्रेरित होकर स्विट्‌ज़रलैंडके साधु सुधारक पेस्टलोजीने अपनी शिक्षण पद्धति प्रतिपादित की थी। पर हर्बार्टको अपने शिक्षणवादके निकालनेमें उस समयके नए विचारोंने बड़ी उत्तेजना दी थी। यदि हम हर्बार्टको पेस्टलोजीका शिष्य कहें तो अत्युक्ति न होगी, क्योंकि पेस्टलोजीके शिक्षण सिद्धान्तोंने उनपर बड़ा प्रभाव डाला था। जिन शिक्षण शास्त्रीय तरकीबों और निरीक्षणोंसे पेस्टलोजीने शिक्षा-जगत्‌में बड़े फेरफार कर दिये थे, उन्हींके आधारपर हर्बार्टने अपनी उच्चकोटिकी विद्वत्ता और पाण्डित्यसे शिक्षणशास्त्रका निर्माण किया। हर्बार्टने अध्यापकोपयोगिनी दृष्टिसे शिक्षणशास्त्रका निरूपण किया है। शिक्षा-जगत्‌में वह पहिला दार्शनिक और मानसशास्त्रज्ञ है।

ऐसे दार्शनिक और मानसशास्त्रज्ञका पूरा नाम था जान-फ्रेडरिक हर्बार्ट। जर्मनीके ओल्डनबर्ग नगरमें उनका जन्म सवत् १८३३ में हुआ। जिस कुलमें वह पैदा हुआ था, वह पाण्डित्यकेलिये कई पीढ़ियोंसे प्रसिद्ध था। उसके पिता और पितामह विद्वान थे। उसका पिता ओल्डनबर्गकी विद्या-पीठका अध्यक्ष और वहींपर बड़ा नामी वकील भी था। इस तरह उसको मेधाशक्ति जन्मसे पैतृक दायभागमें मिली थी और इसके अतिरिक्त शिक्षाने भी उसकी बुद्धिको कुशाग्र कर दिया। कहते हैं कि उसकी माता भी बड़ी विदुषी और अद्भुत गुण-सम्पन्ना स्त्री थी। उसको ग्रीक भाषा और गणितका पूरा अभ्यास था और बचपनमें ही उसने अपने पुत्रको इनमें दक्ष कर दिया था। हर्बार्टकी शिक्षाके ऊपर उसकी माताका बड़ा प्रभाव पड़ा था। शिक्षामें वह अपनी माताका बड़ा ऋणी था। जब वह बच्चा ही था और पाठ-शालामें शिक्षा पा रहा था, तभी उसने अपनी प्रतिभासे अपने शिक्षकोंको चकित कर दिया था। करीब करीब सभी विषयों-में उसकी रुचि बराबर थी। इसी अवस्थामें उसने नैतिक स्वतन्त्रता और अन्य आध्यात्मिक विषयोंके ऊपर विद्वत्ता-पूर्ण लेख लिखा था जिसने उसको विख्यात कर दिया। ओल्डनबर्गकी पाठशालामें वह एक होनहार बालक समझा जाने लगा। वहांकी पढ़ाई समाप्त कर वह जिनाके विश्व-विद्यालयमें प्रविष्ट हुआ। यहांपर उसका अध्यापक प्रसिद्ध दार्शनिक फिक्ट था, जिसकी प्रेरणासे हर्बार्टने उस ज़मानेके विचक्षण अमूर्तिवादी शेलिङ्गकी पुस्तकोंकी मार्मिक समालो-चना की। उन समालोचनाओंको पढ़कर सब विद्वान दाँतोंके नीचे अंगुली दबाते थे और उसकी चमत्कारिणी बुद्धिकी

प्रशंसा मुक्तकण्ठसे करते थे। यहींपर उसने अपने विचारोंको क्रमबद्ध करना शुरू कर दिया।

विश्वविद्यालयकी पढ़ाई समाप्त करनेके बाद वह स्विट्ज़रलैंडके इन्टरलेकन प्रान्तके गवर्नरके तीन पुत्रोंका संरक्षक हो गया। सं० १८५४ से १८५६ अर्थात् निरन्तर दो वर्षोंतक वह इन बालकोंको पढ़ाता रहा। किन तरीकोंके अनुसार वह इन बालकोंको पढ़ाता था और इस प्रकारकी शिक्षासे उनको क्या लाभ होते थे—ऐसी ही बातोंका विवरण उसे अपने गुण-ग्राहकको दो महीनेमें एक बार लिखकर देना पड़ता था। इस पठन पाठनकी व्यवस्थाके ऊपर जो पत्र उसने अपने स्वामीको लिखे थे, उनमेंसे पांच अब भी वर्तमान हैं जिनमें उसकी प्रतिपादित विचारपद्धतिके अङ्कुर मिलते हैं। वास्तवमें यहींपर उसको शिक्षणशास्त्रका व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त हुआ। शिक्षण-शास्त्रसे मानसशास्त्रका क्या सम्बन्ध है, इस बातका अनुभव उसको यहींपर मिला था। उसको अपने शिष्योंकी व्यक्तित्व और उनकी अवस्थाका पूरा ख़याल था। वह अपने शिष्योंमें सदाचार और बहुपक्षीय अनुरागके अंकुर उत्पन्न करनेका प्रयत्न करता था।

स्विट्ज़रलैंडमें हर्बार्ट पेस्टलोज़ीसे मिला। तभीसे उसका ध्यान उस सुधारकके मौलिक सिद्धान्तोंकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित हुआ। सं० १८५६में वह बुर्गडोर्फकी संस्थाको देखने गया। जिन दो वर्षोंमें अपनी सपिडरत पढ़ाईको पूरा करनेमें वह लगा हुआ था, उसी समय उसने पेस्टलोज़ीके विचारोंको वैज्ञानिक स्वरूप देनेका भी प्रयत्न किया था। इसी समयमें उसने पेस्टलोज़ीके शिक्षण पद्धतिके ऊपर दो समालोचनात्मक पर तीव्र नहीं—लेख लिखे। एक लेखमें उसने पेस्टलोज़ीके

नरीकों और उद्देश्योंका संक्षिप्त विवरण दिया और पेस्टलोज़ीके विचारोंसे अपने विचारोंकी प्रगति दिखलायी। दूसरे लेखमें उसने निरीक्षणके लाभको बतलाया और पेस्टलोज़ीकी शिक्षण-विधिको गणितके निश्चित सिद्धान्तोंपर स्थापित करनेकी उसने चेष्टा की।

सं० १८५१ से १८६६ तक वह गाटिन्जनके विश्वविद्यालयमें शिक्षणशास्त्रका व्याख्यान देता रहा। इस कामके अतिरिक्त उसने अपने विचारोंको पुस्तकोंमें बद्ध कर दिया। इन पुस्तकोंमें उसकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। इन दोनों पुस्तकोंमें वह शिक्षाकी उपयोगिता अर्थात् वास्तविक आचार सम्बन्धी शिक्षणपर जोर देता है। पेस्टलोज़ीकी तरह उसका भी मत है कि बाह्य वस्तुका अनुभव ज्ञानका मूल है पर शिक्षाके उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर पाठशालोपयोगी पाठ्यविषयोंको उचित स्थान मिलना चाहिए। यह उद्देश्य नैतिक आत्मदर्शन होना चाहिए। जबतक शिक्षाका उद्देश्य आत्मदर्शन नहीं निश्चित किया जायगा तबतक शिक्षामें वास्तविक उन्नति नहीं हो सकेगी।

दार्शनिक काण्टकी मृत्युके पश्चात्, उसके स्थानपर सं० १८६६ में हर्बार्ट कोनिग्जबर्गके विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्र पढ़ानेके पदपर नियुक्त किया गया। यहींपर सं० १८६७ में उसने शिक्षकोंको तैयार करनेकेलिये एक पाठशाला स्थापित की। यहांपर नवयुवक शिक्षक उसके सिद्धान्तोंके अनुकूल और उसके आदेशानुसार बालकोंको पाठ पढ़ाते थे। शिक्षा-जगत्में यह एक नई बात थी और आजकल विश्वविद्यालयोंमें इसी बातका अनुसरण भी किया जाता है। हर्बार्टके निरन्तर उद्योगसे जर्मनीकी शिक्षा-प्रणाली बहुत ही उन्नतिशालिनी हो गयी। पर हर्बार्ट जैसे स्वतन्त्र विचारवाले मनुष्यको जर्मनीका विरोध

और पुराणरक्षा प्रियता प्रतिबन्धक हो गयी।

कोनिग्जबर्गमें २५ वर्ष निरन्तर काम करनेके पश्चात् उसने गाटिन्जनमें अध्यापक होना स्वीकार कर लिया। उसके जीवनके शेष ८ वर्ष अपने सिद्धान्तोंके पुष्टिसम्बन्धी व्याख्यान देनेमें व्यतीत हुए। यहांपर सं० १८६२ में उसने दो पुस्तकें-(क) शिक्षणकला सम्बन्धी व्याख्यानोंका विवरण, (ख) साधारण शिक्षणशास्त्रका विवरण—प्रकाशित की। पुस्तकमें उसकी शिक्षण पद्धतिकी व्याख्या और मनोविज्ञान सम्बन्धका निरूपण है। इस पुस्तकके नवीन संस्करणके निकलनेपर उसकी जीवन लीला भी समाप्त हो गयी। सं० १८६८में वह अक्षय्य कीर्तिको पाकर इस संसारसे चल बसा।

हर्बार्टकी शिक्षण पद्धति

पेस्टलोज़ी और हर्बार्ट।

पेस्टलोजीका सुधार मनोग्राही होते हुए भी वैज्ञानिक प्रमाणसे शून्य था। पेस्टलोजीके मनोविज्ञानमें बहुत त्रुटियां और अशुद्ध विचार वर्तमान थे। उन त्रुटियोंको ठीक करना और अशुद्ध विचारोंका परिहार करना हर्बार्टकेलिये रह गया था। मनोविज्ञान और नीतिकी भित्तिपर हर्बार्टने अपनी शिक्षण पद्धति स्थापित की। इस तरह पेस्टलोजीके पीछे हर्बार्टने तीन प्रकारके कार्य किये।

(क) मनोविज्ञानका उपचय करना जिससे शिक्षणके गूढ़ प्रश्नोंका उत्तर मिल सके।

(ख) शिक्षामें इस मनोविज्ञानका वैज्ञानिक प्रयोग।

(ग) शिक्षाका मुख्य उद्देश्य नैतिक आचरणका विकास होना चाहिए।

अन्तर्बोध

हर्बार्टको आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षण-कलाका आविष्कारक मानना चाहिए। वह पहिला विद्वान था जिसने सोचा कि शिक्षाकी जातीय प्रणाली वास्तविक मनोविज्ञानके ऊपर प्रचलित करनी चाहिए और नीतिशास्त्र और मनोविज्ञानके आधारपर ही शिक्षाकी पूर्ण इमारत खड़ी करनी चाहिए। वह एक स्थानपर यों लिखता है—

"वास्तविक मनोविज्ञानसम्बन्धी सूक्ष्मदृष्टिका आधार खोजनेके अभिप्रायसे ही मैंने तत्वज्ञान, गणित, आत्मचिन्तन, अनुभव और परीक्षाओंमें अपने जीवनके २० वर्ष निरन्तर परिश्रमके साथ व्यतीत किये हैं। इन परिश्रमशील अन्वेषणोंका मुख्य तात्पर्य यह है और था, जैसा मेरा पूर्ण विश्वास है कि, हमारे शिक्षणकलामें जितनी बातें अभी अज्ञात हैं उनका मुख्य कारण मनोविज्ञानका अभाव है और पहिले हमको इस विज्ञानकी प्राप्ति होनी चाहिए तब हम यह निश्चय कर सकते हैं कि कौन सी बात उचित या अनुचित है।"

यद्यपि हर्बार्टके मनोविज्ञानसम्बन्धी विचारोंका या तो परीहार ही हो गया है या उनमें अनेक परिवर्तन हो गये हैं, तो भी हर्बार्टके मौलिक सिद्धान्तमें, शिक्षाका आधार मनोविज्ञान होना चाहिए अब भी कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है। उसका मनोविज्ञान उसके अन्तर्ध्यानके खोजसे निकला था। हर्बार्टका मनोविज्ञानसम्बन्धी मौलिक सिद्धान्त अन्तर्बोधका है। हर्बार्टके अनुसार चेतनाशक्तिके शुद्धतम तत्व प्रत्यय हैं। एक बार जो प्रत्यय उत्पन्न हो जाते हैं, वे गत्यात्मक वेगमें सम्पन्न होकर नाशको नहीं प्राप्त होते। इनका अस्तित्व अवि-

नाशी हो जाता है। ये प्रत्यय सर्वदा अपनी रक्षाका भरसक प्रयत्न करते हैं। चेतनाशक्तिके शिखरपर पहुंचनेकेलिये इन प्रत्ययोंमें विकराल द्वन्द्व होता है। प्रत्येक सबल प्रत्यय अपने सम्बन्धियों और सजातियोंको खींचकर चेतनाशक्तिमें लानेकी और विजातियोंको भगाने तथा दबानेकी चेष्टा करता है। इस हिसाबसे प्रत्येक नया प्रत्यय या प्रत्ययोंका समूह तभी हमारी चेतनाशक्तिमें रह सकता है, जब चेतनाशक्तिमें पहिलेसे वर्तमान प्रत्ययोंसे उसका सादृश्य होगा, अन्यथा उस प्रत्ययको रहनेका स्थान नहीं मिल सकता या उस प्रत्ययमें बड़े फेरफार हो जायँगे। सदृश प्रत्यय आपसमें मिलकर एक समूह बना लेते हैं। बहुत करके विसदृश प्रत्यय भी, जिनकी तुलना हो सकती है, आपसमें मिल सकते हैं। पर विपरीत या विरुद्ध प्रत्ययोंमें बड़ा विरोध होता है और एक दूसरेको निकाल बाहर करनेकी कोशिश करते हैं। दृष्टान्तके तौरपर एक मकानको लीजिये। यहाँपर यह मान लिया जाता है कि मकान क्या वस्तु है, यह बालक जानता है। ज्योंही वह मकान बालककी आँखोंके सामने आवेगा त्योंही वह उसको पहिचाननेकी कोशिश करेगा। वह उस मकानको या तो अपने मित्रका मकान समझेगा या उस मकानको वह उसकी भिन्न भिन्न जातियोंमें विभाजित करनेकी कोशिश करेगा। वह उसको पाटशाला या कारखाना बतलावेगा। सारांश यह कि वह उस मकानको पहिचानने या जाति विभाजित करनेकी कोशिश करेगा।

इस समानता अथवा जातिविभागकी बदौलत अपने पूर्व ज्ञानसे मनको ज्ञानप्राप्ति होती है। ज्ञानसंचय करनेके इस तरीकेको अन्तर्बोध कहते हैं। अनेक वस्तुएँ, जो मीठी

होती हैं, सफेद भी होती हैं। पर बहुतसी वस्तुएँ मीठी होनेपर भी सफेद नहीं होती हैं। अतः 'मीठापन' और 'सफेदी' दो विसदृश प्रत्यय हैं यद्यपि ये दोनों प्रत्यय एक ही श्रेणीके नहीं हैं, तोभी बहुधा ये हमारे मनमें एक साथ वर्तमान रह सकते हैं। पर श्वेतता और श्यामता कभी भी एक साथ नहीं रह सकते। श्वेतता और श्यामताको विपरीत या विरुद्ध प्रत्यय कहते हैं अर्थात् इन दोनों प्रत्ययों-का निवास एक साथ नहीं हो सकता। प्रत्यक्षमें कोई वस्तु हमारी इन्द्रियोंके सामने उपस्थित की जाती है और तब हम को उसके गुणोंका इन्द्रियगोचर होता है पर अन्तर्बोधमें वस्तुएँ देखी हुई होती हैं। हम केवल उनको पहिचानते हैं या उनका जातिविभाग करते हैं। अन्तर्बोधमें वस्तुएँ ज्ञात होती हैं, पर प्रत्यक्षमें* वस्तुएँ अज्ञात होती हैं जब उनको हम पहिचान सकते हैं। अन्तर्बोधमें हम वस्तुओंकी व्याख्या करते हैं और अपने पूर्व ज्ञानकी बदौलत नवीन प्रत्यय का मिलान करते हैं। इस प्रकार हम अन्तर्बोधकी बदौलत ज्ञातसे अज्ञात वस्तुओंतक पहुच सकते हैं और नए ज्ञानका उपार्जन हो सकता है।

अध्यापकका मुख्य कर्तव्य यह होना चाहिए कि बालकों-को वह इस प्रकार शिक्षा दे जिसमें बालक ज्ञानका सदृशा करण शीघ्रताके साथ कर सके। अन्तर्बोधके अनुकूल अध्यापक बालकोंके अन्दर उसी ज्ञान विषयकेलिये रुचि या ध्यान उत्पन्न कर सकता है जिसका कुछ ज्ञान बालकोंके अन्दर पहिलेसे वर्तमान है। इसलिये बालकोंकी पूर्व परिचित और ज्ञात वस्तुओंको प्रयोगमें लानेकी चेष्टा अध्यापकको कर-

---

* Perception

भी चाहिए। बालकके पूर्व ज्ञानके जाननेकी अवश्यकता है। अध्यापकको पाठ्य विषयोंको इस प्रकार बालकोंके सन्मुख उपस्थित करना चाहिए जिसमें वे बालकोंकी मानसिक शक्तियोंके परे न हों और शिक्षाका मुख्य उद्देश्य भी सिद्ध हो सके। पाठ्यविषयोंकी पूर्ण योजना आवश्यक है। इस प्रकार शिक्षाका सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि नवीन ज्ञातव्य सामग्री इस तरह उपस्थित करनी चाहिए जिसमें वह पुरानीके साथ अन्तर्बोधित या मिश्रित हो जाय। इसके अतिरिक्त बालकोंकी आत्मा भी शिक्षकोंके हाथमें है क्योंकि शिक्षक अन्तर्बोधके समुच्चय या प्रत्ययोंके समूहको बना या परिवर्तित कर सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि नवीन अनुभवका उपार्जन पुराने लब्ध अनुभवके आधारपर होना चाहिए।

अनुराग।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि हर्बार्टके मतानुकूल शिक्षाका असली उद्देश्य नीतिके दृष्टिसे मनुष्यको धार्मिक बनाना है। उसके इस उद्देश्यकी सिद्धि विद्योपार्जनकेद्वारा ही हो सकती है। और विद्योपार्जनका निकट सम्बन्ध मानुषिक मनसे है। इसलिये साक्षात् अभिप्राय मनोविज्ञानके ऊपर ही अवलम्बित मानना पड़ता है जैसे, अन्तिम उद्देश्यका आधार आचारशास्त्रके ऊपर है। हर्बार्टको यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि तात्कालिक शिक्षणको सफलता नहीं प्राप्त हुई, क्योंकि उसका आधार असत्य मनोविज्ञानसम्बन्धी सिद्धान्तके ऊपर था। उसका मत है कि जिन कार्योंका होना साधारणतया भिन्न भिन्न मानसिक शक्तियोंकी प्रेरणासे माना जाता है, वे वास्तवमें कुछ प्रत्ययोंके समूहोंके कारण होते हैं,

यहांतक कि सङ्कल्पशक्ति भी जिससे मनुष्यका आचरण बनता है, कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। इच्छाका मूल विचारमें है। इसलिये बालकको शिक्षा प्रदान करनेके पहिले उसकी मानसिक योग्यता, स्वभाव और विचार-समूहोंका अध्ययन पूरी तौरसे तथा सावधाननापूर्वक कर लेना चाहिए तभी यह भी निश्चित हो सकता है कि किन किन शिक्षण विधियोंको प्रयोगमें लाना चाहिए।

जब बालकके पाठ्य-विषयोंका सादृश्य उसके विचार समूहोंसे नहीं होता है और न उन विषयोंकी ओर उसका मन ही आकृष्ट होता है तब बालकको धर्मके भावोंकी प्राप्ति होनेकी भी कम सम्भावना है और इसलिये उसके आचारके आदर्श भी उच्च नहीं हो सकते क्योंकि वह पाठ्य-विषयोंको घृणा वा उदासीनताकी दृष्टिसे देखता है। उसी समय अन्तर्बोध ठीक तौरसे अपना कार्य कर सकता है जब बालककी रुचिको पर्याप्त उत्तेजना मिल चुकी है और पढ़नेकी ओर तभी बालकका अनुराग भी बढ़ सकता है। अनुराग उस मानसिक कृतिको कहते हैं जिसको उत्तेजित करना विद्याभ्यासका काम है। केवल सूचनाओंसे काम नहीं चल सकता है। जो मनुष्य सूचनाओंको भी ग्रहण करता है और उनके आगे पीछेका वृत्तान्त भी जाननेकी कोशिश करता है, उसीको उसमें अनुराग प्राप्त होता है। यह अनुराग बहुपक्षीय या बहुत पहलुओंका होना चाहिए, न कि एक पक्षीय। इस अनुरागको क्षण कालिकके विपरीत स्थायी होना चाहिए। प्रत्ययोंकी भांति अनुरागके भी दो स्रोत हैं–(क) 'अनुभव' जिससे हमको प्रकृतिके ज्ञानकी प्राप्ति होती है। (ख) 'सामाजिक व्यवहार' जिससे मनुष्योंकेप्रति सहानुभूति सूचक भावोंका

उद्घाटन होता है। इस तरह अनुरागके दो प्रकार किये जा सकते हैं और प्रत्येक प्रकारमें तीन तीन विभाग हो सकते हैं।

(१) ज्ञानका अनुराग—

(क) अनुभव मूलक, जिसका सम्बन्ध इन्द्रियोंसे है। यह वही हर्ष है जिसकी उत्पत्ति हमारे मनमें परिवर्तनों और नवीनताके कारण होती है। जब अनेक वस्तुएं हमारे मनके सामने उपस्थित होती हैं तभी इस अनुरागका जन्म होता है।

(ख) काल्पनिक, जो कार्यकारणका सम्बन्ध ढूंढनेकी चेष्टा करता है। जब हम बालकोंसे वस्तुओंके कारणोंको देखनेकेलिये कहते हैं और जब हम उनको घटनाओंके आगे उन नियमोंतक लेजाना चाहते हैं, जिनसे घटनाओंका एकत्व प्रसिद्ध होता है और जो उनको बुद्धिग्राह्य सम्बन्धमें जोड़े हुए मालूम होते हैं, तब हम काल्पनिक अनुरागसे काम लेते हैं।

(ग) सौन्दर्य विवेकी, जो चिन्तनके ऊपर अवलम्बित है। यह वह अनुराग है जो प्रकृति, कला और नीतिके सौन्दर्यसे उत्पन्न होता है।

(२) सहकारी अनुराग—

(क) सहानुभूति सूचक, जब कभी हम लोगोंका सम्बन्ध (यह उठते बैठते होता है) दूसरे व्यक्तियोंसे होता है, तभी इस अनुरागकी उत्पत्ति होती है। जब हम दूसरोंको प्रसन्न या दुःखित देखते हैं, तब यह अनुराग हमारे मनमें उत्पन्न होता है और इसकी शिक्षा कुटुम्बसे आरम्भ होनी चाहिए।

(ख) सामाजिक, जो जातिको पूर्ण-रूपमें देखता है। यह अनुराग सामाजिक सेवा-भाव और देश-भक्तिकी भित्ति है। बालोंद्यानके खेल, गीत और अनेक वृत्तियाँ सामाजिक अनुरागके ऊपर निर्भर हैं, क्योंकि इनमें सबकी सहायताकी अपेक्षा है।

(ग) धार्मिक अनुराग, हमारा सम्बन्ध ईश्वरसे क्या है, जब इसकी चर्चा होती है, तब इस अनुरागका प्रादुर्भाव होता है।

इस तरह विद्याभ्यासका साक्षात् अभिप्राय बहुपक्षीय अनुराग है। हर्बार्ट स्वयम् कहता है कि "विद्याभ्याससे विचारसमूह बनेंगे और शिक्षासे आचरण। बिना विद्याभ्यासके शिक्षा कुछ भी नहीं है। यही मेरे शिक्षणशास्त्रका निचोड़ है।" पाठ्य-विषयोंके अन्दर सब ज्ञातव्य प्रत्ययोंका सम्मेलन होना ज़रूरी है, क्योंकि आचरणनिर्माण, विद्याभ्यास और ज्ञानवृद्धिकेद्वारा होता है। इसलिये अनुरागके दोनों मुख्य समूहोंमें सादृश्य होनेकेलिये हर्बार्टने पाठ्य-विषयोंको दो मुख्य विभागोंमें विभाजित किया है—

(१) ऐतिहासिक, जिसके अन्दर इतिहास, साहित्य और भाषाएँ सम्मिलित हैं।

(२) वैज्ञानिक, जिसमें गणित, व्यापारिक शिक्षा और प्राकृतिक विज्ञानोंकी गणना है। पर इस बातका ध्यानमें रखना चाहिए कि चाहे जितने विभागोंमें पाठ्य-विषय विभाजित किये जाँय, उनकी एकता न खो देनी चाहिए क्योंकि बालककी चेतनाशक्तिमें एकता वर्तमान है :

शिक्षण विधि

जिन अनुरागोंका विवरण हर्बार्टने किया है और जिनसे बालकके मनोरञ्जन होनेकी सम्भावना हो सकती है, वे ऊपर लिखे जा चुके हैं। पाठ्य-विषयोंका क्या क्रम होना चाहिए और कितनी शिक्षा बालकोंको देनी चाहिए, इन बातोंकी भी व्यवस्था हर्बार्टने की है। मानवी मनकी प्रगतिको (अर्थात् मानसिक शक्तियोंका विकास किस प्रकार होता है इसे) दृष्टिमें

रखकर हर्बार्टने पाठ्य-विषयोंको विभाजित किया है। मानसिक शक्तियोंके लिहाज़से उसने कुछ मानसिक क्रियाओंका उल्लेख किया है। नवीन ज्ञानोपार्जनकेलिये दो मानसिक क्रियाओंकी आवश्यकता होती है। एक तो लीनता और दूसरी मनन है। इन दोनों क्रियाओंका क्रम भी अटूट है। एकके पीछे दूसरेका होना आवश्यक है। इसीलिये इन दोनों क्रियाओंको 'मनका सांस लेना' कहा गया है। नए प्रत्ययों या घटनाओंके संग्रह या प्राप्तिकेलिये तत्पर रहना लीनता है और लीनताकेद्वारा अनेक प्रकारके ज्ञानकी जो प्राप्ति हुई है, उसको एकत्रित करना या उसका सहशीकरण मनन कहलाता है। इन दोनों क्रियाओंसे ही मानसिक शक्तियोंकी सञ्चालना होती है। इन्हीं दोनों क्रियाओंके आधारपर हर्बार्टने अपनी विधायक शिक्षाके क्रमोंका प्रवर्तित किया है। चार प्रकारके अवयवोंका समावेश उसकी शिक्षण-विधिमें है अर्थात् (क) स्पष्टता, ज्ञानतत्व या प्रत्ययोंका उपस्थित करना इसके अन्तर्गत है और यह लीनताका शुद्ध स्वरूप है। (ख) सहचार, जिन ज्ञानतत्वों या प्रत्ययोंका बोध पहिले हो चुका है, उनके साथ नवीन प्राप्त तत्वोंको मिश्रित या सम्मिलित करना ही सहचार है। बहुत अंशोंमें सहचार भी लीनता है पर इसमें मननके भी कुछ अंश हैं। (ग) संगठन*, जो कुछ सहचारद्वारा प्राप्त हो चुका है, उसको सुव्यवस्थित रूपमें रखना संगठन है। संगठनको निष्क्रिय मनन कह सकते हैं। (घ) विधि†, इसका प्रयोग बालक नवीन ज्ञानकी खोजमें करता है। इसका क्रियावान मनन कहा जा सकता है।

* सिस्टम। † मेथड।

हर्बार्टने बीज रूपमें इस विधिका प्रतिपादन किया था, पर उसके अनुगामियोंने इसमें अनेक परिवर्तन करके इसको नया रूप दे दिया है। अन्तर्बोधकेद्वारा जिस ज्ञानकी प्राप्ति बालकको हुई है, उस ज्ञानभण्डारका बोध करा देना और उसकी सहायता लेना वहांतक बहुत आवश्यक है जहांतक उपस्थित किये जानेवाले ज्ञानतत्वोंसे उसका सादृश्य है। हर्बार्टके प्रसिद्ध शिष्य, जिलरने 'स्पष्टता'के अवयवको दो भागोंमें विभाजित कर दिया अर्थात् '(क) भूमिका और' (ख) साक्षात्कार। इस प्रकार सुगमताके लिहाजसे विधायक शिक्षाके पांच प्रकारके भाग किये गये हैं।

(क) भूमिका—इस अवसरपर उन पुराने विचारों तथा प्रत्ययोंको उपस्थित करना चाहिए जिनसे नवीन ज्ञानतत्वोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् नई बात पढ़ानेके समय तत्सम्बन्धी पुरानी बातोंका उल्लेख अवश्य करना चाहिए।

(ख) साक्षात्कार—बालकके सम्मुख नई बातोंको उपस्थित करना।

(ग) सहचार—इस अवसरपर नई बातोंकी तुलना पुरानी बातोंसे की जाती है और नई बातोंका सम्मेलन पुरानी बातोंसे होता है। वास्तवमें इसके दो अवयव हैं, एक तुल्यता और दूसरा एकाग्रता।

(घ) नियम कल्पना—इस अवसरपर गुणोंसे गुणोंको पृथक् करना, विशेष दृष्टान्तोंसे सर्वव्यापी नियमोंका निरूपण करना और अनिश्चित ज्ञानसे निश्चित ज्ञानकी प्राप्ति करना है।

(ङ) प्रयोग—इस अवसरपर बालकको व्यावहारिक बन सकनेकी कार्य करनेका अवकाश देना चाहिए जिससे नवीन ज्ञानकी पुष्टि हो जाये।

पाठ्य-विषयोंकी संयोजना

पाठ्य-विषयोंकी संयोजना या ऐकत्व, हर्बार्टको शिक्षण पद्धतिकी एक विशेष बात है। उसके शिष्य ज़िलरने, इस विचारको 'काल' सिद्धान्तके रूपमें परिणत कर दिया। संयोजनाका अभिप्राय यह है कि चाहे कोई भी विषय पढ़ाया जावे, उसको साहित्य या इतिहास जैसे एक विषयके केन्द्रके चारों ओर एकत्रित करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। जिस विकासवादका उल्लेख पेस्टलोज़ीकी (या हर्बर्ट स्पेन्सरकी) शिक्षण पद्धतिमें किया गया है, उसीका प्रतिपादन हर्बार्टके शिष्योंने भी किया है। एक व्यक्तिकी मानसिक उन्नतिके क्रम जातिके विकासके क्रमके समानान्तर होते हैं जिस प्रकार एक व्यक्तिके भौतिक शरीरका विकास जाति विकासकी तरह होता है। अतः पाठ्य विषय और अध्यापनीय सामग्रीके एकत्रित करने और क्रमानुसार निर्वचन करनेमें इस सिद्धान्तकी सहायता लेनी चाहिए। जातिकी शिक्षामें विकासकी तरह पाठ्य-विषयोंको योग्य क्रम देना चाहिए। जातिमें प्राचीन समयमें जिस विषयकी शिक्षा पहिले दी गयी हो उसीका आरम्भ पहिले एक व्यक्तिकी शिक्षामें होना चाहिए। हर्बार्टका मत है कि पहिले बालकको महाकवि ग्रीस निवासी होमर रचित काव्य-पुस्तक, ओडिसी, पढ़नेकेलिये देना चाहिए क्योंकि इस पुस्तकमें उन बातोंका विवरण है जिनको जातिने अपनी बाल्यावस्थामें किया था। इन बातोंका प्रभाव बालकपर बहुत पड़ेगा। इस काव्य-पुस्तकके पीछे अन्य ऐसी ही पुस्तकोंको पढ़ाना चाहिए। यदि भारतवर्षमें इस सिद्धान्तका प्रचार किया जावे तो सबसे पहिले बालकको वेद, रामायण तथा

महाभारत आदिका अध्ययन कराना चाहिए क्योंकि इन पुस्तकोंमें जाति-विकासकी सामग्री भरी पड़ी है। पर सयोजनाका विचार उपस्थित करनेके समय 'काल' सिद्धान्त-का आ जाना आकस्मिक है। सयोजनाका मुख्य अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार व्यक्तिकी चेतनाशक्तिमें एकत्व है, उसी तरह *पाठ्य-विषयोंमें भी समरूपिता या एकत्व* होना चाहिए।

नैतिक शिक्षा

हर्बार्टके मतानुकूल शिक्षाका उद्देश्य बालकको नीतिवान् बनाना या कर्तव्याकर्तव्य-ज्ञानसे सम्पन्न करना है। जो अध्यापक केवल सूचनाओंके पढ़ाने और नई नई बातोंके बतानेमें ही लगा रहता है और नीति-शिक्षाके ऊपर ध्यान नहीं देता, वह सबसे बड़ा कर्तव्य पराङ्मुख है और वह इस पदमें शोभा पानेके योग्य नहीं है।

हर्बार्ट लिखता है (जैसा पहिले लिखा जा चुका है) कि संकल्पशक्ति मनकी कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं है पर मनको एक बातमें संलग्न करनेका नाम संकल्पशक्ति है। इसकी उत्पत्ति मनके विचारोंसे होती है और उन्हींके ऊपर अवलम्बित है। इच्छासे कर्म होते हैं और कर्मोंसे *आचरण बनता* है। इसलिये नीतिकी शिक्षा दी जा सकती है और शुभकर्म पूर्ण ज्ञानके परिणामी हैं। नैतिक सूक्ष्मदृष्टि परिवारके अनुभवसे उत्पन्न होती है और स्कूली शिक्षणसे नैतिक प्रत्ययोंमें परिवर्तित की जा सकती है, यदि स्वभावके ऊपर पूर्णध्यान दिया जाय। स्नेह, मर्यादा-पालन और शासनके प्रभावसे ये नैतिक आदर्श कार्य्य-रूपमें परिणत किये जा सकते हैं। जब

नैतिक आदर्शसे शुभ कार्य्योंकी उत्पत्ति होगी तो विश्वसनीय नैतिक आदतें बन जायँगी।

इस सम्बन्धमें हर्बार्टकी दो बातोंके ऊपर ध्यान देना जरूरी है।

(क) नीतिकी शिक्षा अध्यापनीय विषयोंकेद्वारा दी जा सकती है।

(ख) स्कूलके सब पाठ्य विषयोंकेद्वारा नीतिकी शिक्षा दी जा सकती है अर्थात् यदि हम बालकोंको इतिहास, साहित्य, भूगोल आदिकी शिक्षा दे रहे हैं, तो पढानेके समय नीतिकी शिक्षा दी जा सकती है।

मर्यादामें शासन और शिक्षण

जिस प्रकार हर्बार्टने शिक्षणविधिमें फेर फार किये हैं उसी तरह मर्यादाके सम्बन्धमें जो विचार उसने प्रकट किये हैं, वे भी जानने योग्य हैं। यद्यपि वह स्कूलमें शासन या दमन रखनेका पक्षपाती है, जो नियामक है, तो भी वह इस को शिक्षण अर्थात् वास्तविक नैतिक शिक्षासे पृथक् समझता है जिसकेलिये शासन निर्धारित किया जाता है। शासनका मुख्य प्रयोजन बालकोंको शिक्षककी इच्छाके वशीभूत रखना है, जिससे शिष्टाचारका उल्लंघन न हो, जबतक बालकोंकी नैतिक आदतें बन नहीं जाती हैं। शासन उनको काममें उद्यत रक्खेगा और उनके ऊपर पूरी निगहबानी बनाये रहेगा। शासन उनके निर्देशकेलिये निषेधात्मक सूचनायें और आज्ञाएँ प्रचलित करेगा। शासन किसीको पुरस्कार, किसीको दण्ड देगा। शासनकी बदौलत बालकोंकी 'महार' प्रियतासे समाजकी पूर्ण रक्षा रहती है और यहाँतक नहीं

यविक शासनके होनेसे बालककी रक्षाका भी प्रबन्ध हो सकता है। शिक्षणसे मनके ऊपर प्रभाव पड़ता है। शिक्षण सङ्कल्पशक्तिके बनानेकी चेष्टा करता है पर शासन उस शक्तिको थोड़ी देरकेलिये निग्रहमें रखना चाहता है। शिक्षणसे विद्योपार्जन और अभ्याससे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है और वास्तविक शिक्षामें शिक्षण और विद्याभ्यास दोनों सम्मिलित हैं। शासनसे वर्तमानकालका काम चलता है, पर शिक्षणमें भविष्यत्का। जबतक शिक्षणकेद्वारा सङ्कल्पशक्तिका प्रादुर्भाव नहीं हो जाता है, जो बालकके कार्मोके ऊपर पूर्ण अधिकार जमा सकेगी, तबतक शासनका काम बालककी उत्पात और उग्रताकी आदतोंको रोकना है। सङ्कल्पशक्तिकी वर्तमानतासे आत्मसयम भी सम्भव है, जैसा सर्वदा निग्रहसे सम्भव नहीं है। यदि शिक्षक सहायता और सहानुभूति प्रकट करेंगे, तो बालक भी विश्वास और आधीनताके चिह्न प्रकाशित करेंगे। शिक्षण ऐच्छिक सहकारिता वा सहयोगका जन्मदाता है और इसलिये पाठशालामें मर्यादा स्थापित करनेका अन्तिम उद्देश्य है।

हर्बार्टके सिद्धान्तोंका प्रभाव और उनकी उपयोगिता

यदि तुलनात्मक दृष्टिसे देखा जाय तो कई बातोंमें हर्बार्ट पेस्टलोज़ीसे बढ़कर था। पेस्टलोज़ीकी विचारशृङ्खला इतनी सम्बद्ध नहीं है जितनी हर्बार्टकी। प्रधानतया पेस्टलोजी हितैषी और सुधारक था, हर्बार्ट एक मानसशास्त्रज्ञ और दार्शनिक था। बाह्यपदार्थोंके ज्ञानकेलिये पेस्टलोज़ीके मतानुसार अनुभव वा परीक्षाकी अपेक्षा है पर वह इसके आगे नहीं बढ़ सका। हर्बार्टने अन्तर्बोधका सिद्धान्त

प्रतिपादित किया। पाठ्य-विषयोंके योग तथा शिक्षण-तरीकोंसे शिक्षाका उद्देश सिद्ध हो सकता है और उससे अन्य सब प्रकारकी शिक्षाओंको नीतिशिक्षाकी सीढ़ियां समझी। ये तो उसकी विशेष बातें हैं।

दूसरी ओर हर्बार्टके शिक्षण--सिद्धान्तोंमें अनेक दोष भी पाये जाते हैं। हर्बार्ट पक्का बाह्य धर्मनिष्ठ था। वह प्राकारक शिक्षाका सच्चा प्रचारक था। इसमें इस बातका भय है कि कहीं वास्तविक शिक्षाको छोड़कर मनुष्य इसी बाह्योपचार और बाहरी आडम्बरकी पूजा न करने लगें। शिक्षण-विधिके भूलभुलइयाँ और विकट जालमें फसकर मनुष्य शिक्षाका मर्म समझनेमें असमर्थ हो जायँगे, ऐसी शङ्का मनमें उत्पन्न होती है।

—

फ्रोबल

जर्मनी देशमें सं० १८४० में फ्रोबलका जन्म हुआ। उसका पूरा नाम फ्रीडरिश विल्हेम आउगुस्ट फ्रोबल था। फ्रोबल और कमीनियसके जीवनमें बड़ा सादृश्य मालूम होता है। कमीनीयसकी भाँति बाल्यावस्थामें उसकी परवाह बहुत कम की गयी। उसके पठन पाठनकी व्यवस्था कुछ भी न हो सकी। जिन कष्टों और दुःखोंको सहन करके उसने कुछ विद्याका अभ्यास किया, उनके स्मरणमात्रसे उसको अपनी अवस्थासे बालकोंकी हितकामना सदैव पीडित किये रहती थी। शैशवावस्थामें ही उसकी माताका देहावसान हो गया। उसका पिता जो आसपासके ग्रामोंका धर्मोपदेशक था, अपने परिवारकी बहुत कम देखभाल करता था। थोड़े दिनोंमें फ्रोबलके सौतेली मां आ गयी जिस कारणसे उसकी दुर्दशाकी मात्रा और भी अधिक बढ़ गयी। उसके ऊपर उसके एक मामाकी दया हुई। थोड़े दिनोंतक स्टैडइलमके समीप वह रहता रहा और समीपवर्ती ग्राम-पाठशालामें पढ़ने जाया करता जहांपर शिक्षक उसको महामूर्ख समझते थे। जीवन पर्यन्त वह बाह्य पदार्थोंमें एकत्व और कूटस्थताके अन्वेषण करनेमें लगा रहा। इस अन्वेषणके विषयमें वह स्वयम् कहता 'है कि बाल्यावस्थामें ही मनुष्यको प्रकृतिसे खूब परिचित होजाना चाहिए जिसमें वह प्रकृतिके शासक परमेश्वरको जान सके। बालकको इस बातकी आवश्यकता भी प्रतीत होती है। पाठशालाओंमें इस कूटस्थता और एकत्वकी शिक्षा नहीं दी

जाती थी और इसीलिये फ्रीबल भी अध्यापकोंको सन्तुष्ट नहीं कर सकता था। उसके पिताने उसको उसके सौतेले भाईके मुकाबलेमें विश्वविद्यालयकी पढ़ाईके योग्य न समझा। वह जङ्गल-विभागके एक हाकिमके यहां दो वर्षतक उम्मेदवारी करता रहा। जब वह थूरिङ्गियन जङ्गलमें अकेले रहने लगा, तब उसको प्रकृतिकी जानकारी प्राप्त करनेका अच्छा अवसर मिला। वैज्ञानिक शिक्षणके बिना ही वह प्राकृतिक अटल नियमोंकी एकरसता और आवश्यक एकत्वका अनुभव करने लगा। वह वृक्षों और शिलाओंसे अद्भुत पाठ निकाल सकता था। उसको प्रकृतिके निरीक्षणसे सर्वव्यापी नियमोंकी सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त हो गयी थी। एक तो वह पहिले ही भावयोगकी ओर झुका हुआ था, पर एकान्त सेवनसे वह भावयोगका दृढ़ प्रेमी हो गया। १७ वर्षकी अवस्थामें उसको उन विचारोंका ज्ञान प्राप्त हो गया जिनमें उसका भविष्यत्‌का जीवन रङ्ग गया था। उसको प्रकृतिकी एकरूपताका अनुभव भलीभाँति हो गया पर प्राकृतिक विद्याओंमें प्रकृतिके सार्वभौमिक नियमोंके प्रयोग देखनेकी उत्कट इच्छासे उसके मनमें पढ़नेकी लालसा उत्पन्न हुई। बड़ी मुश्किलोंसे उसको येना विश्व-विद्यालयमें अपने सौतेले भाईके साथ पढ़नेकी आज्ञा मिली। मगर जिस प्रकृतिके एकत्वके आकर्षणसे वह विश्वविद्यालय-के अन्दर गया था, वह उसको दृष्टिगोचर न हुई। उसकी आर्थिक दशा भी अच्छी न थी। इसलिये उसको घर लौट आना पड़ा और वह कृषि-विद्या सीखने लगा पर अपने पिताकी अस्वस्थताके कारण उसको फिर घर लौट आना पड़ा। सं० १८५६ में उसके पिताका देहान्त हो गया। बीस वर्षकी उम्रमें वह इस तरह संसारमें भटकने लगा। साढ़े तीन वर्ष तक

उदरनिर्वाहकेलिये जर्मनीके प्रान्तोंमें वह भ्रमण करता रहा। कभी वह जमीन मापनेके काममें लगा, कभी मुनीमी किया और कभी किसी सज्जनका अंत मंत्री (प्राइवेट सेक्रेटरी) हो गया।

इन सब कामोंमें उसके आन्तरिक जीवन और बाह्य जीवनमें कोई सादृश्य नहीं था। उसकेलिये उसकी छोटी सी दुनिया पृथक् थी। उसको इस बातका विश्वास था कि संसारमें मेरा जन्म किसी महत् कार्य करनेकेलिये हुआ है। इसी चिन्ताके मारे वह गृहस्थाश्रममें प्रवेश न कर सका। पर संसारमें मनुष्योंकी भलाईकेलिये कौन सा काम करता है, यह उसको अभीतक न ज्ञात हो सका। अकस्मात् एक दिन उसको इस कार्यका निश्चित ज्ञान हो गया। जब वह फ्रान्कफुर्ट नगरमें शिल्प विद्या सीख रहा था, तब उससे एक पाठशालाके संचालकसे परिचय हो गया जिसके अन्दर पैस्टलौजीका कुछ उत्साह आ गया था। इस मित्रने देखा कि फ्रौबलके कार्यक्षेत्रमें शिक्षा होनी चाहिए और उसने फ्रौबलसे पाठशालामें कार्य करनेकेलिये निवेदन किया। जिस प्रकार मछलीको जल पाकर आनन्द मिलता है, उसी प्रकार फ्रौबलको पाठशालामें अध्यापन कार्य करनेसे आनन्द मिला और वह बालकोंको देखकर हर्षसे गद्गद हो जाया करता था। इस पाठशालामें फ्रौबलने दो वर्षोंतक सफलतापूर्वक काम किया, पर उसको शिक्षणकला सीखनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। पाठशालासे पृथक् होकर वह एक परिवारमें तीन बालकोंको पढ़ाने लगा। इस काममें भी उसको सन्तोष न मिल सका और बालकोंके मातापिताकी अनुमतिसे वह उनको पैस्टलौजीके यवर्डून नगरवाले प्रसिद्ध पाठशालामें ले गया जहांपर वह सं० १८६४ से १८६६ तक शिक्षणकलाके खोजमें

निर्मल जल पीता रहा। फ्रोबलको अपनी शिक्षण पद्धति निकालनेमें पेस्टलोज़ीके अनुभवसे बड़ा उत्साह मिला। यद्यपि वह पेस्टलोज़ीका शिष्य था तो भी वह अपने गुरूकी भाँति बड़ा प्रतिभाशाली विद्वान था और उसने पेस्टलोज़ीके अधूरे कामको पूरा कर दिया। अपनी दशाकी आवश्यकता-से जिन अभ्यासोंपर पेस्टलोज़ी पहुंचा था उनके मर्मके जानने-की कोशिश फ्रोबलने की। पेस्टलोज़ीके अनुभवोंपर मनुष्यके स्वभावको दृष्टिमें रखकर फ्रोबलने अपने सिद्धान्तोंका विशाल भवन खड़ा किया। इसी समय फ्रोबलको सत्य मानुषिक विकास और सची शिक्षाकी आवश्यकताओंका भान पूरी तौरसे हुआ।

फ्रोबलका मत था कि मनुष्य और प्रकृतिके अन्दर एक ही प्रकारके नियम काम कर रहे हैं क्योंकि उनका रचयिता एक ही सर्वव्यापी परमेश्वर है। इसलिये फ्रोबलको प्राकृतिक विज्ञानकी जानकारी प्राप्त करनेकेलिये बड़ी अभिलाषा फिर उत्पन्न हुई। स० १८६८ में वह गोटिन्जेनमें फिर पढ़ने लगा। पर अपनी पढ़ाई वह पूरी न कर सका क्योंकि इसी समय नेपोलियन सम्राट्के विरुद्ध लड़नेकेलिये उसने फौजमें अपना नाम लिखवा लिया। यहांपर उसने अपनी अपूर्व देशभक्तिका परिचय दिया। सं० १८७० की लड़ाईमें वह सम्मिलित हुआ। युद्धके अनुभवसे फ्रोबलको मर्यादा पालन और एकत्वकी कीमत मालूम हुई। इसी युद्धमें लैङ्गथाल और मिडनडार्फ नामक दो व्यक्तियोंसे उसकी घनिष्ठ मित्रता हो गई।

जब स० १८७१ में नेपोलियनसे सन्धि हुई तो वह बर्लिन लौट आया और वहांपर वह अध्यापक वीज़के नीचे धातु

या खनिज पदार्थोंके संग्रहका अध्यक्ष हो गया। इस पदपर रहकर उसकी विकास सम्बन्धी ऐक्यभावकी कल्पना निश्चित हो गयी। स० १८१३ में उसने अपने दोनों मित्रोंकी सहायतासे अपनी नवीन शिक्षाके विचारोंको कार्यमें परिणत करनेकेलिये एक पाठशाला खोल दी। जिस गांवमें यह पाठशाला स्थापित हुई, उसका नाम कीलहाउ था। यह गांव नवीन शिक्षाका केन्द्र माना जाने लगा। कीलहाउमें फ्रीबल और उसके मित्रोंने विवाह किया और वे गृहस्थाश्रममें जीवन व्यतीत करने लगे। फ्रीबलको स्कूलके सञ्चालनमें कभी कभी बड़े आर्थिक सङ्कट पड़ते थे पर नवीन शिक्षाकी धुनिमें वह इनकी कुछ भी परवाह न करता था। कीलहाउके "सार्वभौमिक जर्मन शिक्षण संस्था" में दस वर्षतक कार्य करनेके अनन्तर उसने "मनुष्यकी शिक्षा" नामकी पुस्तक प्रकाशित की जिससे उसकी ख्याति बहुत बढ़ गयी। थोड़े वर्षोंतक वह स्विट्ज़रलैंडमें शिक्षाका कार्य करता रहा। वहांसे वापस आकर उसने पहिले पहल ब्लेङ्कनबर्गमें "बालोद्यान" नामक पाठशाला स० १८३४ में खोली।

"बालोद्यान" से मनुष्यजातिका परम उपकार होगा, ऐसा विश्वास फ्रीबलको था। बालोद्यानके आन्दोलनकेलिये उसने सं० १८३४ से १८३७ तक एक साप्ताहिक पत्र निकाला और बड़े बड़े नगरोंमें व्याख्यान भी दिये। ब्लेङ्कनबर्गमें वह नवयुवक अध्यापकोंको शिक्षणकलाके सिद्धान्त बतलाता रहा। उसने अध्यापिकाओंकेलिये भी शिक्षणकलाका प्रबन्ध किया। यहांपर उसके सङ्कटोंका समय आया। सं० १९०७ के राज्य-क्रान्तिके बाद सरकारने उसको "साधारण स्वतन्त्रवाद" और "अधार्मिकता" का प्रचारक समझा और १९०८ में एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया गया कि प्रशियामें कोई भी मनुष्य

फ्रोयलके सिद्धान्तोंके अनुकूल बालोद्यान न स्थापित क उसको सरकारसे आर्थिक सहायता मिलनेकी आशा थी तो उलटे उसके ऊपर यह आघात पहुंचा। ७० वर्षकी अवस्थ सं० १६०६ के ज्येष्ठ मासमें उसका प्राणान्त हो गया।

फ्रोबलकी शिक्षण पद्धति

फ्रोयलकी शिक्षण पद्धतिके उल्लेख करनेके समय ! बातको ध्यानमें रखना आवश्यक है कि चाहे फ्रोयलके अ अपने सूक्ष्मतर विचारोंको व्यावहारिक कार्यमें परि करनेकी असाधारण शक्ति जितनी रही हो, पर उस दार्शनिक प्रबन्धोंके अर्थ करनेमें विशेष कठिनाइयां उ स्थित होती हैं। उसके दार्शनिक प्रबन्धोंमें स्पष्टता अ यथार्थताका बिलकुल अभाव सा है। जो कुछ उसने लिखा उसमें गूढ़ता और कूटस्थता भरी हुई है। कभी कभी उसके विचारोंका आभासमात्र ही हमको मिलता है अ यदि यह कहा जाय कि उसके लेख इतने सङ्केतोंके संग्र मात्र हैं, तो अत्युक्ति न होगी। साधारण भौतिक बातों वर्णन करनेमें भी उसने सांकेतिक ज्ञानके प्रयोगकी बाहुल्य दिखलाई है और साधारणतया मनुष्य उन वर्णनोंमें गूढ़ रहस खोजने लगते हैं। यह यथार्थ भी है। यद्यपि जिस काल में फ्रोबलके विचार प्रकट हुये थे, वह काल वैज्ञानिक उन्नति केलिये प्रसिद्ध है और स्पष्टता उसका लक्षण है, तोभी फ्रोबल विचार इस लक्षणसे बिलकुल पराङ्मुख हैं। उनके समझने सन्दिग्धता उत्पन्न होने लगती है।

शिक्षाका आधार

फ्रौबल विज्ञानका अनन्य उपासक था पर विज्ञानमें उसको कोई ऐसी बात नहीं मिलती थी जो ईश्वरवादी धर्मके विरुद्ध हो। इसके विपरीत विज्ञानसे ईश्वरकी अपरम्पार महिमा और अलौकिक ज्ञान प्रकट होते हैं। फ्रौबलका ऐसा विश्वास था। इसलिये वह परमेश्वरको सब पदार्थोंका आदिस्रोत मानता था और उनकी एकत्वका क़ायल था क्योंकि ईश्वर एक है। सब पदार्थ परमेश्वरमें निवास करते हैं और उसीके आधारपर उनका अस्तित्व है। इसलिये परमेश्वरको दृष्टिमें रखकर सब पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, ऐसी फ्रौबलकी प्रबल आकांक्षा थी। चाहे हम इस आकांक्षाकी सत्यतासे सहमत हों या न हों, हमको इतना अवश्य कहना पड़ता है कि यह आकांक्षा ईश्वरवादी धर्मका अवश्यम्भावी परिणाम है। जबतक हम लोग ईश्वरवादीधर्मके अनुयायी रहते हैं तबतक हमको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि धर्म ही सब सत्य शिक्षाका आधार है। शायद अन्तमें हमारा आदर्श उसके आदर्शसे मिल जावे और उसके इस कथनसे हम सहमत हो जावें कि शिक्षाका वास्तविक कार्य अपना तथा मनुष्य जातिका ज्ञान, ईश्वर और प्रकृतिका ज्ञान प्राप्त करना है। शिक्षासे हमारे जीवन पवित्र और धार्मिक बन सकते हैं क्योंकि उपर्युक्तज्ञान-प्राप्तिका यह परिणाम है। सच्चे, पवित्र, शुद्ध, अखण्डित और धार्मिक जीवनकी साधना शिक्षाका उद्देश है।

ईश्वर एक है और वह सर्वत्र व्यापक है और उसीके कारण प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें सत्यता-

का सञ्चार होता है। इस व्यापक महाशक्तिकी ऐक्यताका बोध होनेसे हम अपनी आत्माके गुणोंका विकास कर सकते हैं। यही शिक्षाका उद्देश है।

फ्रीबल प्रकृतिकी ऐक्यताको अङ्गीकार करता था। फ्रीबलका विश्वास था कि प्रकृतिसे ही बालकको ईश्वरका बोध होता है। इसलिये वह प्राकृतिक घटनाओं और प्राकृतिक विषयोंके ऊपर बालकोंकी पढ़ाईमें ज़ोर देता था और वह जड़ पदार्थोंसे भी गूढ़ रहस्य निकालता था। जीवनकी ऐक्यताके कारण उसने वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र आदि प्राकृतिक विद्याओंके अध्ययनके सम्बन्धमें नया प्रकाश डाला और उसको विश्वास हो गया कि जड़ पदार्थोंमें भी ऐक्यता है। इसी विश्वासका प्रभाव था कि उसने " बालोद्यान " में कुछ पदार्थोंको भी सम्मिलित किया। व्यक्ति और मनुष्यजातिमें सच्ची ऐक्यता वर्तमान है और स्कूल भी इस बड़ी ऐक्यताका संक्षिप्त स्वरूप है। इस तरह स्कूलमें सब सामाजिक बन्धनोंके रूप और प्रतिनिधि दिखलाई पड़ते हैं। स्कूलमें न केवल व्यक्तिगत विकासके अवसर ही प्राप्त होते हैं पर सामाजिक उन्नतिकी भी सम्भावना हो सकती है। इसके अतिरिक्त एक व्यक्तिके जीवनमें भी ऐक्यता दिखलाई पड़ती है, चाहे वह शिशु, बालक, नवयुवक और मनुष्य हो। इस प्रकार आत्मगत तथा अनात्मसम्बन्धी बातोंमें ऐक्यता है, ऐसा फ्रीबलका विचार दृढ़ हो गया। मानसिक वृद्धिका हाल भी इस एकत्व नियमसे फ्रीबलको स्पष्ट हो गया और इसीलिये ज्ञानकी तीनों क्रियाओं (अर्थात् जानना, संवेदन और सङ्कल्प) की ऐक्यताके ऊपर भी उसने ज़ोर दिया।

विकास

ऊपर जिस आदर्शका उल्लेख किया है वह वास्तवमें बहुत उच्च है और स्वभावतया यह प्रश्न उठता है कि यदि हम इस उच्च आदर्शतक पहुंचना चाहें तो इसकेलिये किस मार्गका अनुसरण करना चाहिए विकासवाद ही इसका उत्तर है जैसा भौतिक संसार तथा प्राणियोंके अन्दर विकास पाया जाता है। पहिले पहल निश्चित रूपमें पेस्टलोज़ीने बालकोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें इसका प्रयोग किया था पर स्पष्टता पूर्वक फ्रोबलने ही इसके आधारपर अपनी शिक्षण पद्धति खड़ी की। इसकी विजय दिनोंदिन होती चली जा रही है और इसका कार्यक्षेत्र भी बढता जा रहा है। एक समय ऐसा आवेगा जब शिक्षा-जगत् इसके सम्मुख अपना सिर झुकावेगा। यदि ऐक्यताके दार्शनिक विचारको हम स्वीकार करते हैं, तो सब पदार्थोंकी उत्पत्तिकी अखण्डताका विचार भी सहसा हमको मानने में बाध्य होना पडता है। सर्वथा किसी प्राणी या पदार्थका उच्छेद नही हो जाता है। उसके वंशज या जाति-वाले नाश नहीं होते हैं। विज्ञानमें इस बातको प्रकट करनेके-लिये विकासवादका सूत्रपात हुआ। शिक्षा विकासकी एक साधारण क्रियाकी अवस्था विशेष है। शिक्षा विकास है जिसके द्वारा एक व्यक्ति सर्वव्यापक ऐक्यताके जीवनका अनुभव कर सकता है जिस जीवनका वह एक अंग है। विकासके द्वारा ही एक व्यक्तिके कार्योंका दायरा विस्तीर्ण हो जाता है। यहाँतक कि वह प्रकृतिसे सम्बन्ध जोड़ने लगता है। शिक्षाकी बदौलत वह समाजके सब कामोंमें सहानुभूतिके साथ सम्मिलित हो सकता है यहांतक कि वह जाति और

मनुष्यकी उन्नतिमें अपना बड़ा गौरव समझता है। फ्रौबल स्वयम् लिखते हैं—

"जो गुण पूर्णवस्तुमें पाये जाते हैं वे एक परमाणुमें भी पाये जाते हैं। इस भांति जो मनुष्यजातिमें है वह एक छोटेसे छोटे बालकमें अवश्य है। जो मनुष्यजाति और एक बालकमें पाया जाता है उसका बीज रूपमें होना एक बालकके अन्दर आवश्यक है"।

"विकासवादमें सबसे अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि जिस वस्तुके अन्दर विकास होता है वह परिमाण या आकारमें (यद्यपि विकासमें ये दोनों भी सम्मिलित हो सकते हैं) चाहे बढ़े या न बढ़े पर बनावटकी पेचीदगीमें वृद्धि, शक्ति, चातुर्य्य और विभिन्नताकी उन्नति हो जायगी। हम लोग उसी वस्तुको पूर्णरीतिसे विकसित कहते हैं जिसकी आन्तरिक बनावट हरएक बातमें पूर्ण हो गयी हो और जब वह अपने सब स्वाभाविक कामोंको पूर्णतया सम्पादन कर सकें। यदि इसी भेदको हम मनके सम्बन्धमें प्रयोग करें तो विकासका विचार स्पष्ट हो जायगा। यदि मनके अन्दर ज्ञातव्य सूचनाएँ और बातें खूब भरदी जावें, तो परिमाणमें वृद्धि अवश्य होगी और स्मरणशक्ति भी सम्भवतः बढ़ जायगी। जब मनकी क्रियाओं तथा बनावटमें पूर्णता आवेगी, जब ज्ञानके प्रयोग करनेमें शक्ति, चातुर्य्य और विभिन्नताका परिचय मिले और जब हम ज्ञानसे स्वाभाविक लाभ प्राप्त कर सकें तभी मनका पूर्ण विकास होता है"।

शिक्षाका मुख्य तात्पर्य मानसिक विकास ही है। शिक्षाका राजमार्ग विकास ही है। परमेश्वर हमारे मनके अन्दर किसी विशेष गुणको पौधेकी क़लमकी तरह उत्पन्न नहीं कर देता

है और न प्लेगके टीकेकी तरह कोई गुण ही भर देना है। इसके विपरीत क्षुद्रसे क्षुद्र प्राणियोंके अन्दर विकास होता है। वे पेचीदगीमें बढते जाते हैं।

आत्मकर्मण्यता

यदि सच्ची शिक्षा विकास ही द्वारा प्राप्त हो सकती है, तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस प्रकार एक व्यष्टि समष्टि हो सकती है या एक बीज पूर्ण वृक्षका रूप धारण कर सकता है या जो पदार्थ कुछ कुछ विकसित हुआ है वह कैसे पूर्ण विकसित हो सकता है। इसका उत्तर सृष्टिके प्रत्येक अङ्गसे मिलता है। विकास शक्तिके प्रयोग और अङ्गका अभ्यास करनेसे होता है। यदि शरीरके किसी *अङ्गका प्रयोग न किया जाय और उसकी लापरवाही की जाय,* तो कुछ कालके बाद वह क्षीण हो जायगा या बिल्कुल नष्ट हो जायगा। यह बात केवल व्यक्तियोंके साथ ही नहीं सत्य है, पर मातापितासे लेकर बालकतक और एक पीढ़ीसे दूसरी पीढीतक इसकी सत्यता प्रमाणित होती है। इसीका नाम प्रारब्ध है या जन्मके साथ पैदा हुए संस्कार है। पीढ़ियोंके लगातार अभ्याससे कोई विशेष अङ्ग पूर्ण हो सकता है और पीढियोंके लगातार अनभ्याससे वही अङ्ग बेकार हो जा सकता है। भूत, भविष्यत् और वर्तमानकी मनुष्यतामें एक प्रकारकी अखण्डता है। विकासका परिमाण जन्मके संस्कारों और अवकाशोंपर निर्भर है, जो अभ्यास करनेके-लिये दिये गये हैं और जिनसे लाभ उठानेकी कोशिश की गयी है। यदि हम हाथका विकास करना चाहते हैं तो हमको अभ्यास द्वारा हाथको मजबूत करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

यदि शरीरका विकास करना चाहें, तो हमको शरीरसे व्यायाम करना चाहिए। यदि हम मनका विकास करना चाहते हैं, तो हमें मनको इस्तेमाल करना चाहिए। यदि हम पूर्ण मनुष्यका विकास करना चाहें तो हमें पूर्ण मनुष्यका अभ्यास करना चाहिए। पर क्या किसी ही प्रकारका अभ्यास इस विकासके लिये पर्याप्त होगा? वही अभ्यास वास्तविक विकास उत्पन्न कर सकता है जो सर्वदा वस्तुकी अवस्थासे सादृश्य रखता हो और वस्तुकी शक्तिके ऊपर उसकी मात्रा निर्भर है। अन्य प्रकारके अभ्यास किसी क़दर हानिकारक होते हैं। यदि हमको सच्चे विकासकी अभिलाषा है तो उस वस्तुके विकासको उसीकी कर्मण्यता या उद्योगपर छोड़ देना चाहिए अर्थात् उसीको विकास करनेका अवकाश देना चाहिए और वह *अपनी प्रकृतिदत्त शक्तियोंके सहारे ही विकास करे।* उसकी सब प्रकृतिदत्त शक्तियोंको इस विकासकेलिये जागृत कर देना चाहिए। दृष्टान्तके तौरपर मान लीजिए कि हम एक पौधेके विकासकी वृद्धिकेलिये चेष्टा करते हैं। इसकेलिये हमको यह करना योग्य है कि हम पौधेको अपने सहज तरीक़ेपर बढ़नेका अवसर दें और हम उसकी स्वाभाविक शक्तियोंको बढ़नेकी ओर लगादें। बाढ़तक उसकी क्रुतिको, उसकी कर्मण्यताको, हम क़ायम रक्खें, अन्यथा उसकी यथोचित बाढ़ न हो सकेगी। पौधेके बढ़नेका काम हम नहीं कर सकते। अधिकसे अधिक हम उसके हितकेलिये उचित समयपर खाद, पानी आदिका प्रबन्ध कर सकते हैं। हम कुछ कुछ उसकी बाढ़के समयको भी अपने हाथमें रख सकते हैं। हम उसके फल फूलमें भी कुछ परिवर्तन कर सकते हैं। पर हम स्वयम् उसमें बाहरसे कोई फल फूल जोड़ नहीं सकते।

यदि हम फल फूलमें कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं, तो इस अभीष्टकी सिद्धि पौधेकी कर्मण्यताके द्वारा हो सकती है। इस प्रकारकी कर्मण्यताका नाम फ्रोबलने आत्मकर्मण्यता रक्खा है। हम मनको उसके तीन अवस्थाओं (अर्थात् जानना या अनुभव करना, संवेदन और सङ्कल्प) के प्रकाशमें ही हमेशा ख़याल करते हैं। जो अभ्यास मानसिक विकास उत्पन्न करना चाहते हैं उनको इन तीन अवस्थाओंकी शक्तिके अनुकूल होना चाहिए और उनकी शक्तिके अनुसार समान होना चाहिए, अर्थात् यदि ये तीन अवस्थाएँ सबल हैं तो अभ्यास भी क्लिष्ट होने चाहिएं। यदि ये निर्बल हैं तो अभ्यास भी सरल हों। जिस क़दर मन अपने कामोंको अपनी कर्मण्यता द्वारा ही सम्पादन करता है, उसी क़दर परिणाम भी अच्छा होता है, और शिक्षाका उद्देश्य भी सिद्ध होता है। अभ्यासके समय तीनों अवस्थाओंके ऊपर ध्यान रखना चाहिए। अभ्यासमें प्रत्येक अवस्थाको उचित भाग लेना चाहिए। इस भाँति विकास आन्तरिक चेष्टा या प्रयत्न, आत्मकर्मण्यता और स्वाधीनताके अनुकूल होना चाहिए तभी शिक्षाका उद्देश्य पूर्ण हो सकता है।

अब यह जानना शेष रह गया कि इस प्रकारकी शिक्षण पद्धतिमें शिक्षकको कौन कौनसे कार्य सौंपे जाते हैं। इस विषयमें भी फ्रोबलके विचार बहुत ही स्पष्ट हैं। अब भी बहुतसे ऐसे भोले भाले मनुष्य हैं जो बालकोंके अन्दर ठूस ठूस कर विद्या भरनेको ही शिक्षकका काम समझते हैं, मानों शिक्षकको ही याद करना है। इस विषयमें फ्रोबलका जो मत है, उसका उल्लेख किया जाता है। यदि हम प्रकृतिके ऊपर आधिपत्य जमाना चाहते हैं, यदि हम प्रकृतिको अपने

वशमें रखना चाहते हैं, तो हम ऐसा तभी कर सकते हैं जब हम उसके नियमोंके अनुकूल आचरण करें। शिक्षा देनेमें भी इस बातका ख्याल रखना चाहिए। पढ़ानेके समय हमको चाहिए कि हम बालकको स्वयम् प्रयत्न करनेकेलिये अवसर दें। शिक्षणका अभिप्राय मनुष्यके अन्दरसे ज्ञान निकालना है न कि उसके अन्दर बाहरसे डालना है। शिक्षणका अभिप्राय निष्कर्षण है, न कि समर्पण। इसबातमें पेस्टलोजी और फ्रौबलका मतैक्य है। शिक्षकका कार्य "सहानुभूति सूचक अध्यक्षता"में ही परिणत है अर्थात् शिक्षकको केवल बालककी रहनुमाई ही करना चाहिए। ऊपरसे उसकी निगहबानी होनी चाहिए।

यदि इस प्रकार फ्रौबलने शिक्षकके कार्यकी सीमा निश्चित कर दी है, तो दूसरी ओर उसने शिक्षितोंके कार्यकी सीमा बहुत ही विस्तीर्ण कर दी है। यहींपर फ्रौबलकी विशेषता प्रकाशित होती है। इसी सिद्धान्तकेलिये उसका नाम अमर हो गया है और सर्वदा जीवित रहेगा। इस संसारमें जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, जो कुछ वर्तमान है और जो कुछ हमारे विचारमें आता है, उन सबका आरम्भ कर्म या कृतिसे ही होता है। इसलिये मानवी शिक्षाका आरम्भ भी कृति या कर्मसे होना चाहिए। कर्मण्यताके ही अन्दर विकासयुक्त शिक्षाकी जड़ें होनी चाहिए और वहींसे इसका स्रोत निकलना चाहिए। प्रत्येक बालकके अन्दर "जीवित रहने, कर्म करने, और सोचने", के तीन तार होने चाहिएं और इन्हींके ध्वनियोंके सम्मेलनसे जीवनका प्रवाह चल सकता है चाहे कभी एक तारकी ध्वनिकी अपेक्षा दूसरे तारकी ध्वनि प्रचण्ड हो।

फ्रौवलके पहिले भी अनेक विचारकोंने कर्मकी प्रधानता-को स्वीकार किया था। फ्रौवलने कर्मको न केवल सब वस्तु-ओंका आधार ही माना है पर उसने कर्मका आधार परमेश्वर-को माना है। परमेश्वरके काम सृष्टिमें निरन्तर चले जा रहे हैं। जिस प्रकार परमेश्वरके कामोंकी धारा अखण्डित रूपमें वही चली जा रही है, उसी प्रकार मनुष्यको भी कर्ममें ही सर्वदा प्रवृत्त रहना चाहिए। जो कुछ कर्म वह करे, उसको भलाईके भावोंसे प्रेरित होकर करे।

बालकोंकी कर्तृत्वशक्तिको दृष्टिमें रखकर फ्रौवलने उनको निर्माणशाली, रचनाप्रिय और उत्पादक माना था। बालक केवल ग्रहणक्षम ही नहीं होते हैं। वे दूसरेकी बातोंको केवल ग्रहण ही नहीं कर लेते हैं पर वे स्वयम् उन बातोंको करना चाहते हैं। *बालकोंके अन्दर रचनाशक्ति और निर्माणकारी नैसर्गिक बुद्धि होती है।* फ्रौवलके पहिले भी संसारके सब कालोंमें, सब जातियोंमें और सब बालकोंमें यह उत्पादकशक्ति वर्तमान थी पर फ्रौवल पहिला मनुष्य था जिसने शिक्षामें इस शक्तिका प्रयोग किया और उसीके आधारपर शिक्षाका प्रचार किया। पेस्टलोज़ीने बालकोंके अन्दर मनन करनेकी आदत उत्पन्न करने और अपने समीपवर्ती वस्तुओंके सोचनेके ऊपर जोर दिया था। बालक स्वयम् इनका निरीक्षण कर सकते हैं। उनका अन्वेषण भी वे कर सकते हैं। ऐसा करनेसे उनको वे बातें मालूम हो सकती हैं जो पहिले स्पष्ट नहीं थीं। वे उनके सम्बन्धोंकी पड़ताल कर सकते हैं। यद्यपि बालकोंकी आत्मकर्मण्यतासे ही इन आविष्कारोंका सम्पादन हो सकता है, तो भी आत्मकर्मण्यता एक बातके ऊपर निर्भर है। आत्मकर्मण्यताका होना तभी सम्भव है जब

बालक स्वयम् उन बातोंमें दिलचस्पी लेते हैं। लेकिन अन्वेषण-खोज—में यह दिलचस्पी क्षीण हो जाती है। और तब निरीक्षण भी स्वभावतः बन्द हो जाता है। इसके अतिरिक्त जबतक मनोरञ्जकता विद्यमान भी रहती है, तबतक कर्मण्यता केवल मानसिक ही है। अर्थात् केवल मन ही काममें लीन है। वही सिर्फ सोचने और ग्रहण करनेमें उद्यत है। लेकिन विकासके लिये अन्य वस्तुकी आवश्यकता है। बालकको सिर्फ ग्रहण ही नहीं करना चाहिए पर उसको कुछ प्रकट करनेकी भी जरूरत है। बालकको अपने भावोंको प्रकाशित भी करना चाहिए। यही कारण है कि बालकोंके अन्दर अपने समीपवर्तिनी वस्तुओंके स्पर्श करने, खींचने, तोड़ने और उनकी अवस्थामें परिवर्तन करनेकी प्रबल आकांक्षा वर्तमान रहती है। वे स्थिर नहीं रह सकते हैं। वे बड़े ही चपल होते हैं। यदि उनकी यह चपलता प्रतिबन्धित न की जाय बल्कि अच्छे कामोंमें प्रवाहित कर दी जाय तो बालकोंको अभीष्ट परिणामोंतक पहुंचनेमें बेहद खुशी होती है—उन परिणामोंतक जो उनके कार्योंके ही फल-स्वरूप हैं। विशेषकरके वे अपने विचारोंके अनुकूल ही परिणाम प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार बालक अपने आन्तरिक भावोंको बाह्यकार्योंमें परिणत कर सकता है और जब वह अपनी निर्माणकारी नैसर्गिक बुद्धिको सन्तुष्ट कर सकता है तो वह शरीर तथा मनकी कुछ शक्तियोंको प्रयोगमें लानेके लिये बाध्य हो जाता है।

फ्रौबलने इस तरह मुख्यतया मनुष्यको कर्ता माना है। उसको उसने निर्माणकारी माना है। जो कुछ वह सीखता है आत्मकर्मण्यताके द्वारा ही उसको प्राप्त होता है। इस सिद्धान्तके प्रभाव पाठशालामें भी बड़े चमत्कारी हो

सकते हैं । यद्यपि यह सिद्धान्त मनुष्यकी सब अवस्थाओं-के ऊपर घटित किया जा सकता है, तो भी फ्रौबलने प्रधानतया इसको बाल्यावस्थाकेलिये ही पल्लवित किया था । पर यह प्रत्येक अवस्थाके उपयुक्त शिक्षाका मूल्य जानता था । ऐसा होते हुए भी फ्रौबलने बालोपयोगी बालोद्यानका प्रचार किया था। क्योंकि यदि नए अङ्कुर सुरक्षित रहेंगे तो वृक्ष और पौधे भी आसानीसे बढ सकते हैं । बालकोंकी शिक्षाके-लिये पेस्टलोज़ीने माताओंका सुशिक्षिता होना आवश्यक समझा था । उसका मत था कि बालकोंको माताओंकी देख रेखमें बिल्कुल छोड देना चाहिए अर्थात् पेस्टलोज़ी बालकों-को परिवारकी सम्पत्ति समझता था । एक दूसरे, विद्वान फिक्टे बालकोंको राज्य और समाजकी सम्पत्ति समझता था । फ्रौबलने इन दोनों अतिशयोक्तियोंको छोड कर बीचके मार्गका अवलम्बन किया । उसने कहा कि बालक परिवार और समाज दोनोंकी संपत्ति है । बालकको परिवारमें भी रहना चाहिए और कुछ घण्टोंकेलिये समाजद्वारा स्थापित किये प्रारम्भिक पाठशालाओंमें रहना चाहिए जिसमें उसको समाज-सम्बन्धी प्रथाओं और कर्त्तव्योंसे जानकारी प्राप्त हो जाय और वह अपने परिवारका एक उपयोगी सदस्य भी हो जाय।

शिक्षणरीतिपर फ्रौबलका प्रभाव

फ्रौबलका मूल-मन्त्र ऐक्यता था । पदार्थोंमें विभिन्नता होनेपर भी वह उनमें ऐक्यता देखता था । इस दृष्टिसे वह पाठशालाको ऐसी संस्था समझता था जहाँपर प्रत्येक बालक अपनी व्यक्तिगत शक्तियोंको ढूंढ सके और तदनुसार अपनी उन्नति कर सके । उसको कार्य सम्पादन और सचालनकी

चतुरता प्राप्त हो जावे। पाठशालाका सङ्गठन ही ऐसा होना चाहिए जहाँपर वह बालक कार्य करनेमें दूसरे बालकोंकी सहयोगिताको पा सके क्योंकि वे बालक भी ऐसे ही कार्योंमें प्रवृत्त हैं जहाँपर सब बालक मनोरञ्जकता प्रकट करते हैं, जहाँपर उत्तरदायित्व भी सबके ऊपर समान है और पुरस्कार भी सबको बराबर मिल सकते हैं। ऐसी संस्थामें पारस्परिक सहायता पहुँचानेका भाव सबमें विद्यमान है। ऐक्यता और सहयोगिता स्कूलको नींव हो जाती हैं। विभिन्नता और ऐक्यता साथ साथ मिल सकती हैं। इस प्रकार ऐसी पाठशालाको हम *समाजका "गुटका" संस्करण कह सकते* हैं, क्योंकि छोटेसे दायरेमें इस पाठशालामें समाजके सब व्यवहार पाये जाते हैं। यदि इन सिद्धान्तोंपर शिक्षाका कार्यक्रम जारी किया जाय तो निसर्गकी अवहेलना भी न होगी और न पूर्णरीतिसे निसर्गका इयदवाही रहेगा अर्थात् निसर्ग देवीके ऊपरही सिर्फ शिक्षाका भार न डाल दिया जायगा। इसके विपरीत ऐसे सिद्धान्त प्रकृतिको सहायता देंगे कि वह शिक्षाके उद्देशोंकी पूर्ति कर सके जैसा वह सहायताके बिना शायद न कर सकती।

खेल

छोटे बालकोंके निरीक्षणसे फ्रोबलको यह भली भांति मालूम हो गया कि छोटे बालकोंमें चपलता विशेष मात्रामें होती है। वे कभी भी शान्त होकर नहीं बैठ सकते, यह बात सबको मालूम होगी। उनके शरीरमें बड़ी चञ्चलता होती है और वे अपने शरीरके अङ्गोंको हिलानेसे बड़े आनन्दित होते हैं। यह तो शरीरकी चञ्चलता हुई। दूसरे उनके मनमें भी

बड़ी चञ्चलता होती है। इसी मानसिक चञ्चलताके कारण जो वस्तु उनके ज्ञानेन्द्रियोंकी पहुँचमें आती है उसकी जाँच पड़ताल, उलटने पुलटने और फेंकने आदिकी उत्सुकता हमेशा उनमें विद्यमान रहती है। विशेषकर वे अपने हाथोंसे प्रत्येक वस्तुको,जो उनकी पहुचमें आ जाती है,परीक्षा तथा उसको स्पर्श करना चाहते हैं। हाथसे परीक्षा करनेकी उत्सुकताको प्रत्येक मनुष्यने बालकोंके अन्दर देखा होगा, पर शिक्षासे इस उत्सुकताको सम्बद्ध करनेका सौभाग्य फ्रौबलको ही प्राप्त हुआ। जिस प्रकार हमलोगोंको ऊपर फेंके गये पत्थरोंके पृथ्वीकी ओर लौट आनेसे कोई विशेष ज्ञानका अनुभव नहीं होता है, चाहे हमने सहस्रों बार ऐसी घटनाओंको देखा हो, पर न्यूटनने इसी एक घटनाके आधारपर अपने विख्यात आकर्षण वादको पल्लवित किया था, उसीप्रकार यद्यपि हमने उठते बैठते बालकोंकी शारीरिक तथा मानसिक चञ्चलताको देखा है तो भी उससे हम विशेष लाभ नहीं उठा सकते और न उठाया है क्योंकि हमारेलिये यह एक साधारण बात है। पर फ्रौबल ने शिक्षामें इस चञ्चलताको बड़ा महत्व दिया है। संसारमें सैकड़ों ऐसे भी मनुष्य होंगे जो इस चञ्चलताका निरादर खुले मुहसे करते हैं। इसको बड़ा हेय अवगुण समझते हैं। इसी चञ्चलताको दृष्टिमें रखकर वे छोटे बालकोंको शैतान, बन्दर आदिकी पदविया प्रदान करने लगते हैं। वास्तवमें बालकोंका यह लक्षण कोई ऐसा बड़ा दूषित नहीं है और न इसमें लोगोंको आश्चर्य ही करना चाहिए। फ्रौबलने इस चञ्चलताका असली अभिप्राय समझा और यह कहना अत्युक्ति न होगी कि उसने मनुष्योंका बड़ा उपकार किया। इस उपकारकी दृष्टिसे उसकी समानता बड़े बड़े धार्मिक प्रचारकों, बड़े बड़े दार्शनिकों

और विचारकोंसे की जाती है। फ्रौबलने देखा कि छोटे बालक न केवल वस्तुओंको देखनेसे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, पर वे उनके आकारके बदलनेमें भी बडा हर्ष प्रकट करते हैं और देखी हुई वस्तुओंके आकारों तथा चित्रोंके बनानेकी ओर उनके चित्तकी बड़ी झुकावट रहती है। इस निर्माण-शीलताके अतिरिक्त उसने देखा कि बालक बड़े संगशील और मिलनसार होते हैं और उनको साथियों और मित्रोंकी सहानुभूतिकी बडी आवश्यकता होती है। उनके अन्दर इसी अवस्थामें नैतिकशीलताका विकास, राग-द्वेष-की उत्पत्ति और अहम्भावकी वृद्धि आरम्भ होती है जिनके समृद्ध करने, नियमित रूपमें लाने और अनुशासन करनेकी बडी आवश्यकता होती है। इस प्रकार के अवसर और प्रति-बन्ध दोनों ही, जो एक सुव्यवस्थित समाजमें अवश्य होते हैं, बालकोंके नैतिक विकासकेलिये लाभदायक होते हैं और स्वार्थपरायणताके हटानेमें भी सहायक होते हैं। फ्रौबलके पहिले भी कुछ शिक्षण सुधारकोंने खेलसे उत्पन्न हुए शारीरिक लाभोंका अनुभव किया था, पर फ्रौबल प्रथम शिक्षण सुधारक था जिसने खेलसे उत्पन्न हुए मानसिक और नैतिक लाभोंको पूर्ण रूपमें देखा, उसने खेलके आधारपर अपनी शिक्षणविधि प्रचलित की। बचपनमें लडकोंका मुख्य कार्य खेल रहता है। खेलमें दिन रात छोटे बच्चे प्रवृत्त रहते हैं। खेलमें बच्चे ऐसे कार्योंका अभिनय करते हैं, जिनको वे आगे चलकर संसारमें स्वयम् सम्पादन करेंगे और जिनके उत्तरदायित्वका भार उनके ऊपर पडेगा। यह बात उनलोगों को स्पष्ट हो जायगी जिन्होंने कभी छोटे लडके और लडकि-योंको अपनी गुडियां और खिलौनोंके साथ खेलते हुए देखा

आन्तरिक भावोंके प्रकट करनेका अवकाश मिलता है। यदि एक छोटा बालक गीली मिट्टीके पिण्डको लेकर एक भव्य मूर्ति बना देता है, तो इससे उसके भावोंका पता पूर्ण रीतिसे लग सकता है कि कहाँतक आकारसम्बन्धी ज्ञातव्य बातें उसको मालूम हैं। इससे उसके अन्दर यथार्थताकी आदत आ जावेगी और उसके आचरण-संगठनपर विशेष प्रभाव पड़ेगा।

प्रकृति निरीक्षण

दूसरे शिक्षण-सुधारकोंने प्रकृति-निरीक्षणको ज्ञानप्राप्तिका साधन माना है। पर फ्रोबलको इसमें भी ज्ञानप्राप्तिकी बात स्वीकार नहीं है। प्रकृति-निरीक्षणसे ज्ञानप्राप्तिका होना उसकी रायमें छोटी बात है। फ्रोबलकेलिये प्रकृति-निरीक्षणसे नैतिक आचरणकी शुद्धता, धार्मिक निश्रेयस, आध्यात्मिक सूक्ष्मदृष्टि आदिकी प्राप्ति होना मान्य है। इसीमें वह प्रकृति-निरीक्षणकी उपयोगिताको मानता था। यदि थोड़ी देरकेलिये प्रकृति-अवलोकनसे गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यके जो लाभ ऊपर बतलाये गये हैं, वे छोड़ दिये जायँ, तो प्रकृति-निरीक्षणसे स्वाभाविक मनोरञ्जकता (दिलचस्पी) आ सकती है। जिसके ख्यालसे ही आजकल प्रारम्भिक शिक्षामें प्रकृति-निरीक्षणका समावेश रहता है।

बालोद्यान

फ्रोबलके पहिले भी यूरोपमें ऐसी पाठशालाएँ स्थापित हुई थीं जहाँपर छोटे बच्चोंको विद्याभ्यास कराया जाता था। पर उनकी स्थापना माताओंके लाभकी दृष्टिसे हुई थी और बालकोंकी परवाह बहुत कम होती थी। 'बालकोपयोगिनी संस्थाएँ स्थापित करनेमें फ्रोबलका प्रयोजन दूसरा ही था।

होगा। उनका स्वभाव नकल करनेका होता है। खेलको लड़के उच्छृङ्खल नहीं समझते हैं। खेलमें लड़के बड़ा गम्भीर स्वरूप धारण करते हुए देखे जाते हैं।

निर्माण शीलता

पेस्टलोज़ीने यह स्वीकार किया था कि वाह्यपदार्थोंका जितना भी ज्ञान हमको प्राप्त होता है वह हमारी इन्द्रियों द्वारा ही आता है और इसलिये शिक्षाका अभीष्ट प्रधानतया इन्द्रियोंको इस कामके योग्य बनाना है। इसी अभिप्रायसे उसने अपनी पाठ्य-प्रणालीमें पदार्थपाठ, दस्तकारी आदि सम्मिलित किये थे पर इसमें उसका उद्देश्य ज्ञानसञ्चय था, अर्थात् लड़के नए ज्ञानको ग्रहण करनेके योग्य हो जावें या अधिकसे अधिक उसका उद्देश्य ज्ञानेंद्रियोंको सुव्यवस्थित तथा परिमार्जित करना था। पर फ्रोबलने इन विषयोंको सम्मिलित करनेका दूसरा ही प्रयोजन बतलाया। छोटे लड़कों-के निर्माणशील होनेमें फ्रोबलको कुछ शंका नहीं थी। वह इस निर्माणशीलताको शिक्षाके उपयोगमें लाना चाहता था। यदि कोई वस्तु पढ़नेके समय छोटे बच्चोंको दिखलाई जाती है, तो साधारण मनुष्योंकी धारणा यह होती है कि उस वस्तुके प्रदर्शनसे लड़कोंको नवीन ज्ञानकी प्राप्ति सम्भाव्य है। पर इस प्रदर्शनसे फ्रोबल दूसरेही प्रयोजनकी सिद्धि निकालता था। उस वस्तुको लड़कोंको दे देना चाहिए कि वे उससे कुछ काम ले सकते हैं। निर्माणशीलताका प्रयोजन बड़े महत्वका है। इससे न केवल इन्द्रियोंका विकास, चातुर्यकी वृद्धि, शरीरका व्यायाम और एक दस्तकारीका अभ्यास (जिससे जीविका प्राप्तिमें बहुत सहायता मिल सकती है) सम्भाव्य है, पर इससे

आन्तरिक भावोंके प्रकट करनेका अवकाश मिलता है। यदि एक छोटा बालक गीली मिट्टीके पिण्डको लेकर एक भव्य मूर्ति बना देता है, तो इससे उसके भावोंका पता पूर्ण रीतिसे लग सकता है कि कहाँतक आकारसम्बन्धी ज्ञातव्य बातें उसको मालूम हैं। इससे उसके अन्दर यथार्थताकी आदत आ जावेगी और उसके आचरण-संगठनपर विशेष प्रभाव पड़ेगा।

प्रकृति निरीक्षण

दूसरे शिक्षण-सुधारकोंने प्रकृति-निरीक्षणको ज्ञानप्राप्तिका साधन माना है। पर फ्रौबलको इसमें भी ज्ञानप्राप्तिकी बात स्वीकार नहीं है। प्रकृति-निरीक्षणसे ज्ञानप्राप्तिका होना उसकी रायमें छोटी बात है। फ्रौबलकेलिये प्रकृति-निरीक्षणसे नैतिक आचरणकी शुद्धता, धार्मिक निश्रेयस, आध्यात्मिक सूक्ष्मदृष्टि आदिकी प्राप्ति होना मान्य है। इसीमें वह प्रकृति-निरीक्षणकी उपयोगिताको मानता था। यदि थोड़ी देरकेलिये प्रकृति-अवलोकनसे गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यके जो लाभ ऊपर बतलाये गये हैं, वे छोड़ दिये जायँ, तो प्रकृति-निरीक्षणसे स्वाभाविक मनोरञ्जकता (दिलचस्पी) आ सकती है। जिसके ख्यालसे ही आजकल प्रारम्भिक शिक्षामें प्रकृति-निरीक्षणका समावेश रहता है।

बालोद्यान

फ्रौबलके पहिले भी यूरोपमें ऐसी पाठशालाएँ स्थापित हुई थीं जहाँपर छोटे बच्चोंको विद्याभ्यास कराया जाता था। पर उनकी स्थापना माताओंके लाभकी दृष्टिसे हुई थी और बालकोंकी परवाह बहुत कम होती थी। बालकोपयोगिनी संस्थाएँ स्थापित करनेमें फ्रौबलका प्रयोजन दूसरा ही था।

यह शिक्षाके लाभोंको चाहता था पर पाठशालामें जो त्रुटियां होती हैं, उनसे वह बालकोंको बचाना चाहता था। ऐसी संस्थाओंका नाम उसने बालोद्यान अर्थात् "बालकोंका बगीचा*" रक्खा था वह स्थान जहाँपर मनुष्यरूपी छोटे पौधोंका पालन होता है। बालोद्यानमें बालकोंका व्यापार खेल है। खेलसे ही बालोद्यानकी उत्पत्ति मानी जाती है। पर जिन व्यापारोंसे बालकोंको खुशी मिलती है, वे उनकेलिये खेल हैं। जिन व्यापारोंको फ्रोबलने बालोद्यानमें सम्मिलित किये हैं, यद्यपि बालकोंकेलिये उनसे खेलका आनन्द मिलता है, तो भी वयस्क मनुष्योंकी दृष्टिसे उनके अन्दर शिक्षासम्बन्धी स्पष्ट प्रयोजन है। बालोद्यानका अन्तर्गत प्रयोजन बालकोंको अपने विचारोंको प्रकट करनेमें सहायता देना है जिसमें उनका पूर्ण विकास हो सके। इसका मुख्यप्रयोजन ज्ञानप्राप्ति नहीं है पर विकास, जिसमें ज्ञानप्राप्तिको उद्देशतक पहुंचनेका साधनमात्र माना गया है। ज्ञानप्राप्ति गौण बात है पर विकास और ज्ञानप्राप्ति एक ही साथ होते रहती हैं। विकासके बाद ज्ञानप्राप्तिको स्थान मिलना चाहिए। फ्रोबलके अनुसार बालोद्यानके उद्देश ये हैं—

(क) बालकोंके स्वभावानुकूल उनको व्यापार देना जिसमें उनका चित्त लगा रहे।

(ख) उनके शरीर मजबूत करना।

(ग) उनकी इन्द्रियोंको विकसित करना।

(घ) उनके जागृत मनको काममें प्रवृत्त करना।

(ङ) मानव जाति और प्रकृतिकी स्नेहवृद्धि करना।

---

* जर्मन भाषामें इसे "किंडरगार्टेन" कहते हैं। [किंडर=बालक, गार्टेन=बगीचा]

(च) हृदय और चित्तवृत्तियोंको ठीक रास्तेमें लगाना, जिसमें बालक सब जीवनके स्रोततक पहुंचनेमें समर्थ हो सके।

बालोद्यानमें खेल कूद, क्रीडाएँ, सङ्गीत, कथाएँ, निर्माणकारी कृतियोंका समुचित जुटाव रहता है। इन्हींके द्वारा अध्यापक बालकोंकी मनोरञ्जकता और व्यापारोंको नियमित रूपमें ढाल सकते हैं। जहाँतक सम्भव हो, इन साधनोंको एक दूसरेका सहायक ही समझना चाहिए। दृष्टान्तके तौर पर, यदि एक कथा बालकोंको सुनायी गयी तो बालकोंको अपनी भाषामें उस कथाको कहने की कोशिश करनी चाहिए पर कथाकी समाप्ति यहींपर नहीं हो जाती है। इस कथाको गीत, हाथोंके हाव भाव, चित्रों तथा कागज़ वा मिट्टी आदिसे निर्माण की गयी वस्तुओं द्वारा प्रकाशित करना चाहिए। ऐसा करनेसे बालकोंकी बुद्धि और विचार परिपक्व हो जायँगे, कल्पनाशक्तिको उत्तेजना मिलेगी, हाथों और आंखोंको मिलकर काम करनेकी आदत पड़ेगी, शारीरिक उन्नति होगी और नैतिक शीलताका विकास भी होगा। इस भांति बालकोंका चहुंतरफा विकास हो सकता है।

बालोद्यानकी मुख्य सामग्री "दान" [अंग्रेजीमें "गिफ्ट"] कहलाती हैं। वे सख्यामें ६ होती हैं। जब बालक एक सामग्री या पदार्थसे भली भांति परिचित हो जाता है, तो उसको दूसरे पदार्थका बोध कराया जाता है। वे पदार्थ ये हैं—

(१) रङ्ग बिरङ्गे ऊनके गेंद। इन गेंदोंसे रङ्ग, गोलापन, मृदुता, चिकनाहट आदिकी शिक्षा दी जाती है और इनमें शारीरिक अङ्गोंका व्यायाम, चातुर्य्य, आंखोंकी प्रवीणता और निशाना ठीक लगाने आदिका अभ्यास होता है।

(२) एक लकड़ीका गेंद और एक बड़ा सम्पूर्ण घन।

इनकी तुलनासे आकारोंका बोध, गुण और गतिका बोध कराया जा सकता है।

(३) एक बड़ा घन जो ८ छोटे छोटे घनोंसे बना है। इससे सख्यागणना, जोड़, बाकी, गुना, भाग और भिन्नकी प्रारम्भिक शिक्षा दी जा सकती हैं। इससे बालकोंके तोड़ने फोड़नेकी इच्छाको काफ़ी सामान मिल सकता है।

(४), (५) और (६) कई प्रकार के घन जिनमेंसे कुछ बराबर भागोंमें और कुछ छोटेबड़े भागोंमें विभाजित रहते हैं। इनसे संख्या और आकार निर्माणकी शिक्षा दी जाती है।

इन पदार्थोंके बाद छड़ियोंको रखकर चित्र बनाना, चित्र-लेखन, कागज़ मोड़ना, तह करना या काटना आदि सिखलाये जाते हैं। इन्हींके साथ सङ्गीत, व्यायाम, पदार्थपाठ और कथाएँ भी सम्मिलित रहती हैं।

नवीन शिक्षाका सारांश

फ्रोबलकी लिखी हुई पुस्तकोंमें "नवीन शिक्षा" बड़ी प्रसिद्ध है। धीरे धीरे उसका सम्मान बढ़ रहा है। उसका सारांश निम्नलिखित है—

(१) प्रत्येक पाठ्य विषयका मूल्य उसी हिसाबसे लगाना चाहिए जिस हिसाबसे वह शक्ति उत्पन्न और विकसित करने-में समर्थ है और शक्ति आत्मकर्मण्यता द्वारा ही विकसित होती है।

(२) स्मरणशक्तिको मानसिक अन्य उच्च शक्तियोंके नीचे स्थान मिलना चाहिए अर्थात् शिक्षामें स्मरणशक्तिके ऊपर कम ख़याल रखना चाहिए।

(३) चाहे जैसा शिक्षण बालकको दिया जाय, उसकी

वास्तविक स्थितिके अनुकूल ही उसका होना आवश्यक है, न कि उनकी भविष्यत् आवश्यकताओंके अनुकूल।

(४) प्रकृति, आधुनिक भाषाओं और साहित्यके पढ़नेमें बहुत समय देना चाहिए, पुरानी भाषाओंके पढ़नेमें कम।

(५) मानसिक शिक्षाके साथ साथ शारीरिक शिक्षाका भी प्रबन्ध होना चाहिए।

(६) हाथों और आंखोंके प्रयोग करनेका अभ्यास ग़रीब और अमीर सबको कराना चाहिए।

(७) स्त्रियोंकी उच्च शिक्षाका प्रबन्ध वैसा ही होना चाहिए जैसा मनुष्योंकी शिक्षाका।

(८) चिकित्सकोंकी भांति अध्यापकोंको भी शिक्षणकला सीखना आवश्यक है।

(६) सब विधियों—तरीक़ों—का वैज्ञानिक आधार होना चाहिए। उनको मानसिक नियमोंके अनुकूल होना चाहिए।

शिक्षण पद्धतिका प्रचार

यह बड़े खेदकी बात है कि कुछ मनुष्य केवल फ्रौबलकी त्रुटियोंपर ही ध्यान देते हैं। उनके लिये फ्रौबलकी शिक्षण पद्धति दोषपूर्ण है। पर यह बात न्यायसङ्गत नहीं और न इसमें बहुत सार ही है। वास्तवमें फ्रौबलको शिक्षण-सुधारकोंका शिरोमणि मानना चाहिए। वह पेस्टलोज़ीकी निरूपण की हुई शिक्षण पद्धतिका सच्चा पोषक था। पेस्टलोज़ीकी तरह वह मनुष्यका स्वाभाविक विकास चाहता था। इस विकासका यथार्थ स्वरूप क्या होना चाहिए, इसके ऊपर उसने बहुत मनन किया था। उसके हृदय-पटलपर यह स्वरूप अङ्कित होगया था। इसमें सन्दिग्धताका नाम तक नहीं था।

आधुनिक समयमें लगभग सभी सभ्य देशोंमें फ्रौबलके विचारोंका समुचित प्रचार हो गया और हो रहा है। कोई पाठशाला ऐसी नहीं है जिसमें फ्रौबलकी शिक्षण पद्धतिके अनुकूल छोटे बच्चोंको शिक्षा न दी जाती हो। फ्रौबल्के जीवन कालमें उसके सिद्धान्तोंका उतना प्रचार नहीं हुआ जितना उसके मृत्युके बाद उसके अनुगामियोंद्वारा हुआ। फ्रौबलकी धर्मपत्नी और मिडनडार्फ और वैरनस फान ब्यूलो उसके सिद्धान्तोंके प्रवर्तक समझे जाते हैं। वैरनस फान ब्यूलो बडी उच्च विचारकी स्त्री थी और धनसपन्ना भी थी। अपनी विद्या और धनसे अपने गुरु फ्रौबलके विचारोंका समस्त यूरोपमें उसने प्रचार किया। देशोंमें जा जाकर वह व्याख्यान देती थी। इसका प्रभाव भी खूब पडा। अब कोई सभ्य देश (यूरोपमें जर्मनी देशको छोडकर) ऐसा नहीं है जहांपर फ्रौबलके विचार शिरोधार्य न समझे जाते हों। उसको मानवजातिका बडा उपकारक समझना चाहिए।

हर्बर्ट स्पेन्सर

जब यूरोपमें विक्रमी बीसवीं शताब्दीके प्रारंभिक वर्षोंमें प्राकृतिक विज्ञानोंका विकास हो रहा था, तब पाठ्य-विषयोंमें उनको सम्मिलित करनेसे क्या लाभ प्राप्त हो सकते हैं इस बातकी भी चर्चा की जारही थी। जिस प्रकार कुछ वर्ष हुए (भारतीय पाठशालाओंमें और कालेजोंमें) विज्ञानका शिक्षण बहुत ही कम होता था और संस्कृत और फारसी आदि भाषाओंका ही अखण्ड राज्य था, उसी प्रकार उन दिनों यूरोपमें लैटिन और ग्रीक भाषाओंके सामने स्कूलों और कालेजोंमें विज्ञानका प्रवेश नहीं होने पाता था। पर आगे चल कर इन भाषाओंकी शक्ति बहुत कम हो गयी और धीरे धीरे पाठ्य-विषयोंमें विज्ञानको भी आदरणीय स्थान मिला। यह पूर्व शिक्षण सुधारकों और तात्कालिक विकास वादियोंके उद्योग का फल था। पर जब केवल इस विषयकी चर्चा ही मात्र हो रही थी, तब अंग्रेज दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सरने इसके महत्वको भलीभांति जानकर इसका समर्थन किया था।

ऐसे शिक्षण मर्मज्ञ और दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सरका जन्म इंग्लैण्डके डार्बी नामक नगरमें सं० १८७७ में एक अध्यापकके वंशमें हुआ। उसके पिता और चाचा भी स्कूलमें अध्यापक थे और अच्छे विद्वान समझे जाते थे। बाल्यावस्थामें उसके ऊपर पिता और चाचाकी शास्त्रीय विद्वत्ता और मानसिक उन्नतिके अच्छे संस्कार पड़े जिनसे उसको बहुत लाभ हुआ। जब कभी वे किसी गूढ़ विषयपर वार्तालाप करते तो स्पेन्सर उनकी बातोंको ध्यानपूर्वक सुना करता।

बाल्यावस्थामें निर्बलताके कारण वह किसी भी पाठशालामें

नहीं भेजा गया और न उसका पिता ही पढ़नेकेलिये उससे कुछ कहता था। जीवन भर उसको स्वास्थ्यकी शिकायत बनी रही, पर इसके कारण सच्ची शिक्षासे वह वञ्चित नहीं रक्खा गया। वह स्वयम् अपने आत्मचरितमें लिखता है कि लड़कपनमें ही विज्ञानकी ओर मेरा विशेष झुकाव हो गया और जब मैं बाहर घूमने जाया करता, तो अपने साथ भांति भांतिके कीड़े मकोड़े और वनस्पतियाँ ले आया करता। उनके ऊपर वह अनेक प्रकारके प्रयोग किया करता। इसीसे उसकी असली वैज्ञानिक शिक्षाका आरम्भ हुआ। पिता उसको इन कार्योंमें उत्साहित किया करता और उसमें जिज्ञासा वृत्तिके अङ्कुर उत्पन्न करता था। घरपर ही उसके पिता और चाचाने उसको प्रारम्भिक शिक्षा देना आरम्भ कर दिया और कुछ दिनोंकेलिये वह पाठशाला भी पढ़नेके लिये भेजा गया था जहाँपर गणित और विज्ञान आदिके शिक्षणके समय दर्जेमें उसका पद सबसे ऊंचा हो जाता। पर पाठ सुनानेके समय उसको सब लड़कोंके नीचे आना पड़ता था। विज्ञानकी ओर हर्बर्टकी विशेष रुचि देखकर उसका पिता उसे उत्साहित किया करता। पिताकी विद्वत्तासे उसे बहुत ही लाभ हुआ क्योंकि बाल्यावस्थामें ही उसके पिताने उसके मनके सामने ज्ञानके असली मोटे मोटे सिद्धान्तोंका विशाल भवन बनाकर खड़ाकर दिया था। अपने चारों ओर शास्त्रोंकी चर्चा सुनकर वह पुस्तकोंके पढ़नेमें दिन रात लगा रहता। उसको पुस्तकावलोकनसे अतिशय प्रेम हो गया। जीवनभर उसकी अध्ययनकी यह आदत न छूटी।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, वह बाल्यावस्थामें बहुत निर्बल था। पर ११ वर्षकी अवस्थामें उसकी यह निर्बलता

जाती रही और वह नीरोग हो गया। वह बडा निडर और साहसी था। जिस उम्रमें बहुतसे लडके घरोंसे निकलनेमें डरते हैं, उसी उम्रमें एक बार वह अपने चाचाके घरसे, लगभग १०० मील-की दूरीसे, अपने घर भाग आया। इस लम्बी यात्राको उसने केवल दो दिनमें अकेले समाप्त की थी। बिना प्रमाण और सबूतके स्पेन्सर किसी बातको भी न स्वीकार करता। मरते-दमतक यह स्वभाव उसका न छूटा। इसीकी बदौलत उसका नाम संसारमें अमर हो गया। बिना तर्ककी कसौटीपर कसे हुए वह किसीकी बातकी सत्यताके ऊपर विश्वास न करता।

स्पेन्सरकी शिक्षा सोलह सत्रह वर्षकी अवस्थातक घरपर ही होती रही। इस थोडीसी उम्रमें उसने गणितशास्त्र, यंत्र-शास्त्र, चित्रविद्या आदिको खूब पढ लिया। इतनी विद्याओंके अभ्यास करनेमें उसने किसी भी विद्यालयका मुह नहीं देखा। पर उस समय विश्वविद्यालयकी शिक्षा पाये बिना कोई भी अच्छी नौकरी नही मिल सकती थी। इस त्रुटिके हाते हुए भी उसने रेलके महकमेका काम सीखना आरम्भ कर दिया और १७ वर्षकी उम्रमें वह इञ्जीनीयर हो गया। इस महकमेमें वह आठ वर्षतक बराबर काम करता रहा और एञ्जीनियरीके एक सामयिक पत्रमें वह लेख भी लिखता रहा जिससे उसको लेख लिखनेमें अच्छा अभ्यास हो गया। विद्याकी ओर उसका विशेष झुकाव होनेके कारण उसको इस महकमेसे अलग होना पडा। सं० १८६६ में उसने 'राजाका वास्तविक अधिकार' शीर्षक एक लेखमाला 'नानकन्फारमिस्ट' नामक पत्रमें छपवाना आरम्भ किया। पीछेसे इसी मालाको पुस्तकके रूपमें उसने प्रकाशित किया। इसके बाद स्पेन्सर 'एकानामिस्ट' नामक एक सामयिक पत्रका सहकारी सम्पादक हो गया और लगभग ५ वर्षतक इसका सम्पादन करता

रहा। कुछ दिनों बाद वह लंदन गया और यहाँपर "वेस्टमिनिस्टर रिव्यू" नामक सामयिक पत्रमें लेख लिखने आरम्भ कर दिये। लेख लिखना ही उसका एक मात्र व्यवसाय हो गया जिसमें उसने अकथनीय उन्नति की और उसका लिखनेका अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। इससे उसका बड़ा नाम हो गया। ३० वर्षकी उम्रमें उसने "सोशल स्टैटिक्स" नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तकके लिखनेमें उसने अपनी अगाध विद्वत्ताका परिचय दिया और इसके प्रकाशनसे विद्वानोंमें उसका समुचित आदर होने लगा। इसके पढ़नेसे उसकी सत्यप्रियता और आत्मिकबलका बहुत ज्ञान होता है।

आध्यात्मिक और सृष्टिरचनासम्बन्धी विषयोंके मनन करनेकी ओर उसकी बुद्धिका झुकाव विशेष था। वह इन्हीं गूढ़ और गहन विचारोंमें निमग्न रहता। विज्ञानके ऊपर उसकी बहुत ही श्रद्धा थी। धीरे धीरे वह विकासवादका पक्का पोषक हो गया। जितनी भी पुस्तकें उसने लिखी हैं और जितने भी लेख उसने प्रकाशित किये हैं उन सबमें इसी विकासवादकी गन्ध वर्तमान है और कोई भी विषय न बचा जिसपर उसके मानसिक विचारोंका आक्रमण न हुआ हो। इसीको दृष्टिके सामने रखकर उसने नए नए सिद्धान्तोंका आविष्कार किया जिनसे उसने समस्त संसारको अपने विचार वैचित्र्यतासे चकित कर दिया। प्रसिद्ध विकासवादी डारविनका स्पेन्सर समकालीन था। स० १६१२ के लगभग स्पेन्सरने "मानस शास्त्रके मूलतत्त्व" नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तकके प्रकाशनसे उसकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं रही। इस कार्यमें उसको लगभग १५,००० रुपयेका घाटा सहना पड़ा। पर वह इस हानिसे विचलित नहीं हुआ। उसकी इस अर्थ

उच्छृंखलता और हानिको सुनकर उसके कुछ अमरीका निवासी प्रशंसकोंने उसके पास २,२५००० रुपये सहायतार्थ भेजे पर उसने इनको लेना स्वीकार न किया।

सं० १९१७ में स्पेन्सरने अपनी सबसे विख्यात पुस्तक "संयोगात्मक तत्वज्ञान पद्धति" (ए सिस्टेम आव सिंथेटिक फिलासफी) का लिखना आरम्भ किया। इसको उसने पांच भागोंमें विभक्त किया और दस जिल्दोंमें समाप्त किया। इस अद्वितीय पुस्तकमालासे उसकी कीर्त्ति दिगन्तव्यापिनी हो गयी। किन्तु इसमें ज़रूरतसे अधिक उसने तर्क और विकासवादकी सहायता ली है। इसके प्रकाशनसे स्पेन्सरको १८,००० रुपये-की हानि हुई पर २४ वर्षमें उसका यह घाटा पूरा हो गया। हर्बर्ट स्पेन्सरने ५ या ६ और कई उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखी हैं जिनमेंसे "शिक्षा" नामक पुस्तक भी है। इस छोटेसे जीवन-चरित्रके प्रकाशित करनेमें हमको स्पेन्सरकी इसी पुस्तकसे मतलब है। इसीके अन्तर्गत शिक्षणसिद्धान्तोंका उल्लेख करना ही हमारा मुख्य प्रयोजन है।

सं० १९३९ में स्पेन्सर अमरीका गया जहांपर उसका बड़ा ही आदर किया गया। वृद्धावस्थाके पांच सात वर्ष उसके अच्छे नहीं कटे। उसको एकान्तवास बहुत ही प्रिय था और मनुष्योंसे यह बहुत कम मिलता जुलता था। ८४ वर्षकी परिपक्व अवस्थामें सं० १९६० में उसका देहावसान हो गया। स्पेन्सर अपनी अन्तिम इच्छापत्रमें मृत शरीरको अग्निसे जला देनेके विषयमें लिख गया जिसके अनुकूल उसका शरीर अग्निके संस्कारसे भस्म कर दिया गया। शवदाहकी प्रथा ईसाइयोंमें प्रचलित नहीं है। हिन्दुओंकी इस अच्छी प्रथाके अनुकरण करने-में स्पेन्सरने अपने अलौकिक आत्मिकबलका परिचय दिया।

स्पेन्सरके दार्शनिक विचारोंका प्रभाव संसारके पढ़े लिखे मनुष्योंपर बहुत पडा है। यह निर्लोभी और दृढ़ संकल्पवाला था। उसका अविश्रान्त परिश्रम केवल ज्ञानकी सीमा बढ़ानेके लिये बहुत ही प्रशंसनीय था। उसकी कर्तव्यनिष्ठा पराकाष्ठाको पहुंच गयी थी। ऐसे महा दार्शनिक विकासवादीके शिक्षण-सिद्धान्त क्या थे, इसीकी मीमांसा करना अब हमारा उद्देश्य है।

हर्बर्ट स्पेन्सरकी शिक्षण पद्धति

केवल एक ही पुस्तकके प्रकाशनसे हर्बर्ट स्पेन्सरका नाम शिक्षण सुधारकोंमें गिना जाने लगा है। वह पुस्तक है "शिक्षा" मानसिक, नैतिक और शारीरिक। उसने पहिले शिक्षा सम्बन्धी अपने विचारोंको लेखोंद्वारा सामयिक पत्रोंमें प्रकाशित किया। और सं० १९१७ में उसने उन लेखोंको एकत्रित करके पुस्तकाकार में प्रकाशित करदिया। आरम्भमें ही यह लिख देना आवश्यक होगा कि स्पेन्सरकी पुस्तक शिक्षाकी आलोचना करनेमें इस बातका ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि स्पेन्सरने जीवनभर शिक्षाके कार्यमें कोई योग नहीं दिया और न शिक्षण विषयोंपर उसने बहुत अध्ययन ही किया था। इन विषयोंपर जो विचार उसने पल्लवित किये हैं, वे उसके निजके हैं पर "शिक्षा" पुस्तकके सम्पादन करनेके समयका प्रभाव उसके ऊपर बहुत पडा था। शिक्षा-विशारदोंका मत है कि उसने कोई नवीन शिक्षण सिद्धान्त नहीं निकाले हैं। प्रसिद्ध शिक्षण सुधारक, रूसो, पेस्टलोज़ी और हर्बार्टके विचारोंको दृष्टिमें रखकर उसने अपने सिद्धांत लिखे हैं जो उन्हींके सिद्धान्तोंके आभास कहे जा सकते हैं। पर उचित है कि हर्बर्ट स्पेन्सर ऐसे बड़े लेखककी बातोंको हम आदरपूर्वक सुनें। पण्डित

महावीरप्रसाद द्विवेदीजीने इन्हें "तत्वदर्शियोंका शिरोमणि" और " वर्तमान युगके तत्वज्ञानियोंका राजा " माना है। यूरोपके अनेक विख्यात शास्त्रवेत्ता स्पेन्सरके निरूपित किये गये सिद्धान्तोंसे सहमत हैं। पर शास्त्रोंसे पराङ्मुख बहुतसे मनुष्योंका विश्वास हो चला है कि स्पेन्सरके इन प्रचर्चित सिद्धान्तोंमें भविष्यत्‌की शिक्षा प्रतिबिम्बित है। शिक्षा सम्बन्धी एक अंग्रेजी पुस्तकके बड़े लेखककी ऐसी ही धारणा है। पर हमारी हिन्दी भाषाके एक पूज्य वयोवृद्ध अनुवादक ने—जिनका उल्लेख ऊपर आ चुका है—तो यहां-तक लिख डाला है कि "स्पेन्सरके सिद्धान्तोंके माननेमें प्रायः किसीको भी 'किन्तु,' 'परन्तु' करनेकी जगह नहीं रह गयी" और उनको " मान्य समझकर अंग्रेजोंने अपने देशमें अपनी शिक्षाप्रणालीमें परिवर्तन आरम्भ कर दिया है"। ऐसे प्रशंसा सूचक वाक्योंमें तो श्रद्धाकी मात्रा अधिक दिखायी पड़ती है क्योंकि इङ्गलैन्ड और यूरोपके बहुतसे विद्वान इन सिद्धान्तों-को बिल्कुल निर्दोष और निर्भ्रान्त नहीं मानते हैं। जब उन देशोंकी ऐसी अवस्था है, तो भारतवर्षकी दशाका क्या कहना, जहांपर पाश्चात्य देशोंमें प्रचलित प्रथाओं और बातों-का अक्षरशः अनुकरण करना ही ठीक समझा जाता है चाहे उन प्रथाओं और बातोंकी उपयोगितामें लोगोंको सन्देह भी हों। अतएव हम लोगोंकेलिये आवश्यक है कि स्पेन्सरके शिक्षा विषयक इन सिद्धान्तोंकी भली भाँति जांच पड़ताल कर लें और तब तदनुसार व्यवहार करनेकी कोशिश करें।

'शिक्षा' पुस्तकके संकलन करनेमें महानुभाव स्पेन्सरने जिज्ञासा प्रवृत्तिसे समीचीन सहायता नहीं ली है। शिक्षा ऐसा गहन और सूक्ष्म विषय है जिसमें ऐसी नीतिको व्यव-

शास्त्रमें न लानेसे सभ्यताके छिपजानेकी शंका होने लगती है। जो मनुष्य शिक्षाका व्यावहारिक ज्ञान न रखता हो और अध्यापकोंका कठिनाइयोंसे नितान्त अनभिज्ञ हो, वह यदि प्रचलित प्रणालीको विध्वंस करनेमें खण्डनात्मक कटाक्षोंका उड़ाते बैठते अपनी पुस्तकमें प्रयोग करे तो उससे विपक्षियोंके ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। हां, अलबत्ते वे प्रामाणिकताको ऐसी प्रदर्शनीसे चिढ़ अवश्य जायेंगे और यह दिखलाना आरम्भ करदेंगे कि इन सिद्धान्तोंमें सत्यका अंश कितना है और कहांतक वे व्यवहारमें प्रयोग किये जा सकते हैं।

स्पेन्सरकी इस पुस्तकमें चार निबन्ध हैं जिनमेंसे पहिला ही निबन्ध बड़े महत्वका है और उसीके ऊपर तीव्र आलोचनाओंके आघात हुए हैं। इस निबन्धमें इस बातकी मीमांसा की गयी है कि शिक्षाके सच्चे उद्देशको पूर्ण करनेकेलिये कौन ज्ञान सबसे अधिक उपयोगी है। इस विवेचनामें प्राचीन भाषाओंके शिक्षाका घोर विरोध किया गया है। स्पेन्सरने इस प्रकार बहस की है—

मनुष्योंको उपयोगिता या लाभप्राप्तिका कम ख्याल रहता है पर दिखावाका ही अधिक रहता है। समयके हिसाबसे लोगोंका ध्यान कपड़े लत्तेकी अपेक्षा सजावटकी तरफ अधिक जाता है। यही हाल हमारे पाठशालाओं और विद्यालयोंका है। उनमें भी बाहरी शोभा या शृंगारकी ही ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। जिस प्रकार दक्षिणी अमरीकाकी ओरिनाको नदीके आसपास रहनेवाले असभ्य आदमी घरसे बाहर निकलनेके समय अपने शरीरको रङ्ग लेते हैं, जिससे उनको किसी प्रकारका लाभ नहीं होता है (पर शरीरको रङ्गे विना पोते बाहर निकलनेमें

उनको लज्जा मालूम होती है) उसी प्रकार लड़कोंकी मानसिक शिक्षाकेलिये लैटिन, ग्रीक, संस्कृत आदिकी आवश्यकता अनुभव की जाती है, चाहे ऐसी शिक्षाका वास्तविक मूल्य कुछ भी न हो और उसका व्यावहारिक बातोंमें कुछ भी उपयोग न हो। पर लैटिन, ग्रीक और संस्कृत भाषाओंकी शिक्षा इस ख्यालसे दी जाती है कि यदि ये भाषाएं हमारे लड़कोंको न आवेंगी तो लोगोंके सम्मुख उनको लज्जित होना पड़ेगा। अभी तक भिन्न भिन्न प्रकारकी शिक्षा या ज्ञानकी अन्यसापेक्ष्य योग्यताके ऊपर बहुत ही कम बहस हुई है। नियमानुसार विवेचना होकर ठीक सिद्धान्तोंका निश्चय किया जाना तो और भी दूरकी बात है। इसको दृष्टिमें रखकर पाठ्य-विषयोंकी बुद्धिग्राह्य एक सूची बनाना चाहिए पर यह सूची तभी तैयार की जा सकती है जब हमको मालूम हो जाय कि हमको किन किन बातोंको जाननेकी परम आवश्यकता है। इस उद्देशकी पूर्तिकेलिये लाभ या उपयोगिताको जानना बहुत ही ज़रूरी है। हम लोगोंकेलिये सबसे पहिला प्रश्न यह होता है कि किस प्रकार हम अपना जीवन निर्वाह करें। जीवन निर्वाह करनेसे केवल शरीर सबन्धिनी बातोंसे ही संकीर्ण मतलब नहीं लेना चाहिए पर इसके व्यापक अर्थका लेना ही हमको उचित है। जीवनको पूरे तौरपर सार्थक करना ही शिक्षाका मुख्य कार्य है। और किसी शिक्षाकी योग्यता वा अयोग्यताका निर्णय करनेके समय केवल इसी उचित तरीक़ेकी शरण लेना चाहिए कि वह शिक्षाप्रणाली किन अशोंतक इस उद्देश्यकी पूर्ति करती है। यह स्पष्ट है कि ऐसा करनेकेलिये हमारा पहला काम यह होना चाहिए कि संसारमें आदमीको जितने बड़े बड़े काम करने पड़ते हैं, महत्वके अनुसार उन सबके

विभाग हम करदें। इन कामोंके दरजे इस तरह नियत किये जा सकते हैं—

(१) वे काम जो *प्रत्यक्ष रीतिसे आत्मरक्षामें सहायता* देते हैं।

(२) वे काम जो निर्वाहकेलिये आवश्यक वातोंको प्राप्त कराकर परोक्षरीतिसे मनुष्यकी जीवन रक्षामें मदद देते हैं।

(३) वे काम जो सन्तानके पालन-पोषण और शिक्षण आदिसे सम्बन्ध रखते हैं।

(४) वे काम जो समाज और राजनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाली उचित वातोंको *यथास्थित* रखनेकेलिये किये जाते हैं।

(५) वे फुटकर *काम जिन्हें अन्य लोगों और वातोंसे* फुरसत पानेपर मनोरञ्जनकेलिये करते हैं।

ऐसा करनेमें हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि ये विभाग एक दूसरेसे विल्कुल ही पृथक् हैं। हम इस वातको माननेमें सङ्कोच नहीं करते कि ये विभाग वहुत ही पेचीदा तौरपर एक दूसरेसे मिले हुए हैं। यह विल्कुल ही सम्भव नहीं कि कोई आदमी किसी एक प्रकारकी शिक्षाका, जो एक व्यवसायकेलिये उपयोगिनी हो, ज्ञान प्राप्त करे और उसे वाक़ी सब प्रकारकी शिक्षाओंका थोडा वहुत ज्ञान न हो जाय। इस क्रमके विषयमें भी हम यह स्वीकार करते हैं कि कभी कभी पीछेके विभागोंकी शिक्षाओंकी कोई कोई वात उन विभागोंके पहिले स्थान पाये हुए विभागोंकी शिक्षाओंकी किसी किसी वातसे अधिक महत्वकी मालूम होगी। इन सव वातोंका विचार करलेनेके वाद भी शिक्षाके पूर्वोक्त पाचों विभागोंमें फिर भी वहुत कुछ भेद रह जाता है। स्थूल दृष्टिसे देखनेसे यह स्वीकार ही करना पडता है कि इन *विभागोंका क्रम भी, महत्त्व या*

ज़रूरतके ख़यालसे, यथार्थ है। शिक्षाके जितने विभाग हैं, उन सबको पूरे तौरपर जानलेना ही आदर्श शिक्षा है। पर सबके लिये इस पूर्ण शिक्षाका मिलना सम्भव नहीं तो भी हमारा मुख्य कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि महत्व और ज़रूरतका खयाल रखकर, शिक्षाकी सब शाखाओंको हम योग्य परिमाणमें सीखें। जो शिक्षा सबसे अधिक महत्वकी हो, उसपर सबसे अधिक, जो कम महत्वकी हो उसपर कम और जो सबसे कम महत्वकी हो उसपर सबसे कम ध्यान देना उचित है।

विज्ञानकी उपयोगिता

इस कसौटीद्वारा स्पेन्सरने यह निश्चित किया है कि विज्ञानकी शिक्षा जीवनमें बहुत ही लाभदायिनी होती है और इसलिये बहुत ही उपयोगिनी होती है। जितने प्रकारकी शिक्षाएं हैं सबसे अधिक प्रधानता और महत्व उसने विज्ञानको ही दिया है। जीवनसम्बन्धी कार्मोके उपरोक्त पाचों विभागोंके ऊपर उसने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और उन विभागोंकी यथार्थ शिक्षाकेलिये किसी न किसी विज्ञानकी आवश्यकता उसने दर्शायी है। शरीर-विद्याका ज्ञान आरोग्यरक्षा, और आत्मरक्षाकेलिये ज़रूरी है। किसी प्रकारके उद्योग-धन्धे या परोक्ष रीतिसे प्राण रक्षाकेलिये उदरनिर्वाहक अन्य किसी कार्यके सम्पादन करनेमें गणितशास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, प्राणिविद्या और समाजशास्त्रके कुछ ज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है। अपने बाल बच्चोंकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक शिक्षणकी देखभाल करनेकेलिये माता पिताओंको शरीरविद्या, मानसशास्त्र और नीतिशास्त्रके मोटे मोटे सिद्धान्तोंसे परिचित होना चाहिए। एक मनुष्य

सभ्यसमाजका अच्छा नागरिक तभी बन सकता है जब उसको राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक इतिहासके विज्ञानकी वाक़फ़ियत हो। जीवनके फुरसतके समय किये जानेवाले आमोद प्रमोद और दिल बहलाव आदिके कार्मोंकी जानकारी प्राप्त करना शरीरविद्या, यन्त्रविद्या और मानसशास्त्रके ऊपर अवलम्बित है, जो विद्याएं कला, संगीत और कविताकी आधार हैं। विज्ञान काव्यके विस्तृत मैदानको प्रकाशित करता है जहांपर विज्ञानसे अनभिज्ञ मनुष्योंको कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ता। विज्ञानमें विलक्षण सरसता है बिना जिसके जाने मनोरञ्जक कला कौशलोंसे पूरा पूरा आनन्द नहीं मिल सकता।

यहांतक स्पेन्सरने विज्ञानकी शिक्षाका इसलिये समर्थन किया है कि इससे जीवनके कार्मोंको पूरा करनेमें बहुत ही अधिक सहायता मिलती है जितनी सहायता अन्य प्रकारकी शिक्षासे कदापि नहीं मिल सकती। स्पेन्सरको मालूम था कि भाषा शिक्षाका समर्थन लोग इसलिये करते हैं कि उससे मानसिक शक्तियोंका अच्छा सुधार होता है। पर विज्ञानशिक्षासे यह भी सुधार होता है ऐसा सिद्ध करनेकी चेष्टा स्पेन्सरने की है। जीवनको पूरे तौरपर सार्थक बनानेकेलिये विज्ञान हमारा पथप्रदर्शक तो है ही, पर विज्ञानकी शिक्षा हमारी मानसिक शक्तियोंको भी मज़बूत करती है। स्पेन्सरका कथन है कि 'इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिन बातोंका जानना चालचलनको सुधारने और हरएक कामको मुनासिब तौरपर करनेकेलिये सबसे अधिक जरूरी है, उनके जाननेसे मानसिक शक्तियोंको भी सबसे अधिक लाभ पहुंचता है"। "ज्ञान प्राप्तिकेलिये यदि एक तरहका अभ्यास दरकार होता और मानसिक

शक्तियोंको सुधारनेकेलिये दूसरी तरहका, तो सृष्टिके सुन्दर और सरल नियमोंमें बट्टा लग जाता"। अपने इस कथनको पुष्ट करनेकेलिये स्पेन्सर लिखते हैं कि प्राचीन भाषाओंके शिक्षाके समान विज्ञानसे न केवल स्मरणशक्ति ही बढ़ती है, पर इस लाभके अतिरिक्त विज्ञानसे बुद्धि भी परिमार्जित होती है। इन भाषाओंके शिक्षासे अधिक विज्ञानशिक्षासे विचार और विवेचनाकी भी शक्ति बढ़ती है और आचरण भी सुधर जाता है। विज्ञानसे धार्मिक प्रवृत्ति भी बढ़ती है क्योंकि "संसारके सारे पदार्थोंकी स्थिति और कार्यकारणशक्तिमें जो एक प्रकारकी एक रूपता देख पड़ती है, उसके विषयमें वह पूज्य बुद्धि पैदा करता है"। मानसिक शक्तियोंको सुधारने, और विकसित करने तथा ज्ञान-प्राप्तिके लिहाजसे भाषा और साहित्यकी अपेक्षा संसारमें सबसे अधिक उपयोगी शिक्षा विज्ञानकी ही है।

स्पेन्सर विज्ञानका अनन्य भक्त है, यह उपरोक्त बातोंसे स्पष्ट हो जाता है। उसने ऐसी शिक्षाप्रणालीकी चर्चा की है जिसमें भाषा-शिक्षाके बदले विज्ञानको सबसे ऊंचा स्थान मिला है जिसमें अन्यसापेक्ष उपयोगिताके लाभ सबको प्राप्त हो सकें। पर हमको यह खयाल रखना चाहिए कि स्पेन्सरने विज्ञान शब्दका प्रयोग बड़े व्यापक अर्थमें किया है। विज्ञानके ऐसे अर्थ ग्रहण करनेमें हेत्वाभास हैं—इसमें उसकी गलती है। स्पेन्सरके मतमें विज्ञानके अन्दर न केवल भौतिक और प्राणिविद्याएँ ही शामिल हैं, पर स्पेन्सरने विज्ञान शब्दके अन्दर सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक विद्याओंको भी सम्मिलित किया है। ऐसा करनेमें स्पेन्सरने न्यायशीलताका परिचय नहीं दिया है। भाषाशिक्षाकी प्राचीन प्रणालीमें उपर्युक्त बहुतसी विद्याओंको उचित आसन दिया जाता था

और उनकी अवहेलना नहीं की जाती थी। हां, यह उनका कथन ठीक है कि उस समय इंग्लैन्डमें शरीर विद्या, रसायनशास्त्र, भूगर्भविद्या आदिको पाठ्य-विषयोंमें, जो उस समय विश्वविद्यालयोंकी परीक्षाओंमें रक्खे जाते थे, स्थान नहीं मिलता था। स्पेन्सरके इस अदम्य उद्योगसे विज्ञानकी उपयोगिताको लोग स्वीकार करने लगे हैं। स्पेन्सरका यह दावा है कि विज्ञानशिक्षासे नैतिक लाभ भी मिलते हैं। इससे आचार शिष्ट होता है और जीवन बहुत ही सरस, सभ्य और प्रभावशाली बनता है। इन लाभोंको उसने युक्तियोंद्वारा समर्थन करनेकी कोशिश की है।

विज्ञान और भाषाका मिलान

जिन दलीलोंसे स्पेन्सरने भाषाशिक्षाका घोर विरोध किया और विज्ञानशिक्षाकी उपयोगिता दिखलाई है, अब हमको उनका संक्षिप्तमें विचार करना है। स्पेन्सरने लिखा है कि "ज्ञानप्राप्तिकेलिये यदि एक तरहका अभ्यास दरकार होता और मानसिक शक्तियोंको सुधारनेकेलिये दूसरी तरह का, तो सृष्टिके सुन्दर और सरल नियमोंमें बट्टा लग जाता"। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जिस शिक्षासे सबसे अधिक उपयोगी ज्ञानकी प्राप्ति होती है क्या वही शिक्षा मानसिक शक्तियोंको सुधारनेमें भी पर्याप्त है। लेकिन यह देखा जाता है कि विकासके भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें बच्चोंकी मानसिक शक्तियोंके शिक्षणकेलिये भिन्न भिन्न विषयोंको उपयोगमें लाना पड़ता है। स्पेन्सरकी शिक्षण पद्धतिमें जिस विज्ञानकी बाहुल्यता है उसके अनुसन्धान करनेवाले तरीक़ोंको एक बच्चेका अपरिपक्व बुद्धि नहीं ग्रहण कर सकती। स्पेन्सरके

अनुसार एक वैज्ञानिक प्रयोग करता है और इसका परिणाम विद्यार्थीके सम्मुख उपस्थित किया जाता है। उस प्रयोगकी मुख्य मुख्य बातोंको विद्यार्थी कण्ठाग्र करता है और जब कभी ज़रूरत पड़ती है तब वह उनको 'कह' सकता है, जैसे भाषा-शिक्षामें विद्यार्थी महाभारतमें वर्णित किये गये चरितनायकोंका संक्षिप्त हाल और 'मुद्राराक्षस' आदिके पात्रोंके नाम बतला सकते हैं। पर इस प्रकारकी शिक्षासे मानसिक शक्तियोंकी बहुत ही कम उन्नति हो सकती है, यह स्पेन्सरकी धारणा है। हमको चाहिए कि हम बालकोंको अच्छी बातोंके करनेमें उत्तेजना दें और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि बालकोंको अपनी बुद्धिकी उन्नति आप ही करनेमें उत्साह मिले। स्पेन्सर लिखते हैं कि बच्चोंको पौधोंकी भिन्न भिन्न जातियोंके नाम 'जिनकी संख्या अनुमान ३,२०,०००' है, और प्राणियोंकी योनियोंके नाम भी 'जिनकी संख्या अनुमान २०,००,०००' है, याद करना चाहिए। इन नामोंको याद करनेके सामने व्याकरणकी रूपावली, धातुपाठ और अमरकोषका कण्ठाग्र करना बहुत ही आसान है। इन नामोंके याद करनेमें भलेही स्मरणशक्ति बढ़ जाय, जैसा स्पेन्सर स्वयम् स्वीकार करते हैं, पर वास्तविक मानसिक उन्नतिका होना दुष्कर है। जिस प्रकार विद्यार्थियोंका मन व्याकरणके रूपोंके रटनेमें नहीं लगता है और उनका आमोद प्रमोद नहीं होता है, उसी तरह पौधोंके नामोंके याद करनेमें विद्यार्थियोंको किसी प्रकारका आनन्द नहीं मिलेगा और जिस कठिनतासे उनको बचानेकी कोशिश की जाती है, वह कठिनता अपने पूर्णरूपमें उनके सामने उपस्थित रहती है। दोनों प्रकारकी शिक्षाओंमें एकही परिणाम निकलता है। इस वैज्ञानिक शिक्षासे हमारे बहुतसे छात्रोंमें

घृणा उत्पन्न हो जायगी। इसलिये चाहे हम स्पेन्सरकी धारणाको स्वीकार करें कि संसारमें एक ही प्रकारका ज्ञान सबसे अधिक उपयोगी होता है या परित्याग करें, पर हमको इतना अवश्य कहना पड़ता है कि हम यह कदापि नहीं मान सकते कि शिक्षाकी जुदी जुदी अवस्थाओंमें सार्वत्रिक एक ही प्रकारका ज्ञान होता है जिससे बुद्धिकी शक्तियाँ अच्छी तरह उन्नत हो सकती हैं। मानसिक शक्तियोंके विकासके प्रत्येक जुदी अवस्थामें एक ही प्रकारके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार कई प्रकारके ज्ञानोंकी जरूरत अनुभव होती है।

मानसिक शक्तियोंको मजबूत करनेकी जो प्रधानता स्पेन्सरने विज्ञानको दी है, वह बात युक्तिसङ्गत भी नहीं है। ज्ञानप्राप्ति और मानसिक शक्तियोंको सुधारनेकेलिये एक ही प्रकारकी विद्याभ्यासकी आवश्यकता होती है, इस बातकी सत्यताको बिना सिद्ध किये हुए ही वह इसको मान लेता है। इस बातकी सत्यताको दिखलानेकेलिये वह प्रकृतिकी दुहाई देता है। फजूलखर्ची रोकनेके लिहाज़से प्रकृतिने ऐसा प्रबन्ध किया है कि एक ही प्रकारके ज्ञानसे रहनुमाई भी होती है और चालचलन भी सुधरता है। प्रकृति ऐसा करनेमें बाध्य है। इन दो कार्योंको सम्पादन करनेमें दो प्रकारके ज्ञानोंकी आवश्यकता नहीं है। पर जब हम प्रकृतिके ऊपर दृष्टिपात करते हैं, तब उपर्युक्त बातकी सत्यताके बिलकुल विपरीत अवस्था नज़र आती है। विकासवादियोंके सिद्धान्तके अनुसार, जिनके शिरोमणि हर्बर्ट स्पेन्सर माने जाते हैं, प्रकृतिसे बढ़कर और कोई फ़जूलखर्ची है ही नहीं। विकासवादी स्वयम् कहते हैं कि प्रकृति इस लिहाज़से सब वस्तुओं

को बहुतायतमें पैदा करती हैं कि उस उत्पत्तिका अधिकांश अवश्य ही नष्ट हो जायगा। इस युक्तिकी सत्यताको मानकर स्पेन्सरने जो प्रधानता विज्ञानको लुप्त भाषाओंके शिक्षाके ऊपर दी है, वह यथार्थमें ठीक नहीं। स्पेन्सरने चालचलन सुधारसम्बन्धी लाभोंको, जो ऐसी शिक्षासे मनुष्योंको मिलते हैं, अच्छी तरह नहीं समझा था। मालूम होता है कि ऐसी शिक्षासे प्राप्त चालचलनसम्बन्धी लाभोंका आधार स्पेन्सरने स्मरणशक्तिकी शिक्षाको माना है।

किसी प्रकारकी शिक्षाकी उपयोगिताको कसनेके समय हमको शिक्षाके उद्देशपर ध्यान देना चाहिए। शिक्षाका सबसे बड़ा काम जीवनको पूरे तौरपर सार्थक बनाना है। जीवनको सार्थक बनानेकेलिये स्पेन्सरने जीवनके सब कामोंको पांच विभागोंमें विभक्त किया है जैसा ऊपर लिखा जा चुका है। स्पेन्सरके मतानुसार इन विषयोंको भली भांति जाननेकेलिये बहुत सी विद्याएँ होती हैं। इन विद्याओंको पढ़ाना ही शिक्षाका मुख्य कार्य होना चाहिए। इस बातकी सत्यता ग्रहण करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। थोड़ी देरकेलिये यदि मान भी लिया जाय कि प्रत्येक विभागकी शिक्षाकेलिये एक ही प्रकारके विज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है, तो भी इन विज्ञानों की शिक्षा बच्चोंकी समझमें नहीं आ सकेगी, और न एक व्यक्तिको इतना समय ही मिल सकेगा कि वह सब विज्ञानोंको या उनके योग्य परिमाणको ही सीख सके। अधिकसे अधिक छोटे बच्चोंको विज्ञानके परिणामों और फायदोंकी शिक्षा दी जा सकती है। पर स्पेन्सरको ऐसी शिक्षा स्वीकार न होगी क्योंकि इसमें प्रामाणिकताके ऊपर अधिक ज़ोर दिया जाता है—जिस प्रामाणिकताके भारसे बच्चे ऐसे ही दबे जाते हैं।

स्पेन्सरके लेखानुसार वही शिक्षा उपयोगिनी होती है जिससे हमारे कार्योंके ऊपर प्रभाव पड़े, और वह त्याज्य है जिससे कि हमारे शारीरिक व मानसिक कार्योंके ऊपर असर न पड़ सके। शरीर-विद्याके ज्ञानसे परोक्ष रीतिसे आत्म-रक्षामें बहुत सहायता मिलनेकी सम्भावना है। केवल इसी युक्तिको लेकर पाठ्य विषयोंमें शरीर विद्याको सम्मिलित करनेका यदि प्रयत्न किया जावे, तो इस विद्याके पक्षपातियोंका अभिप्राय सिद्ध न होगा। क्या यह बात ठीक है कि शरीर विद्याके ज्ञानसे डाक्टर अपनी तथा अपनी सन्ततिके स्वास्थ्य और जीवनकी रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। मैं समझता हूं कि यह बात विवादास्पद है। पर स्पेन्सरकेलिये यह बात यथार्थ है। स्पेन्सर ठीक कहता है कि *यदि किसी शब्दका अशुद्ध उच्चारण करता हुआ कोई मनुष्य* पकड़ लिया जाय, तो उसको बहुत लज्जा आवेगी। पर वही मनुष्य इस बातकी अज्ञानता स्वीकार करते समय कुछ भी लज्जित नहीं होता कि "यूस्टाकियन *" नामकी नलियां कहां हैं और नाड़ीकी मामूली गति क्या है। स्पेन्सर कहते हैं कि कैसी भयङ्करताके साथ दिखाऊ शिक्षाने उपकारी और उपयोगिनी शिक्षाको पीछे फेंक दिया है। इन व्यङ्ग वचनोंके लिखते समय स्पेन्सरका सङ्केत लुप्त भाषाओंकी शिक्षाके तरफ है क्योंकि इस समय पाठ्य विषयोंमें ये भाषाएं शामिल हैं और शरीर-विद्याको उनमें स्थान नहीं मिला है। पर इन विषयोंकी *अन्यसापेक्ष उपयोगिताके ऊपर हमारी राय ऐसी नहीं है।* बड़े बड़े विद्वानोंने लिखा है कि इन भाषाओंके शिक्षाका होना आवश्यक है। कमसे कम महानुभाव मिलको ऐसी शिक्षाकी निर्ब

* Eustachian Tubes.

कता स्वीकृत न थी। मेरी समझमें यह बात भी नहीं आती कि नाडीकी मामूली गतिकाज्ञान हमारे लिये किस फ़ायदेका है।

महत्वके अनुसार उस शिक्षाका दर्जा आता है जो जीवन-निर्वाहका रास्ता बतलाकर परोक्षरीतिसे आत्म-रक्षा करनेमें मनुष्यको सहायता दे। -इसकेलिये गणित, भौतिक विज्ञान और प्राणिविद्या आदि विज्ञानोंकी शिक्षा देनेकी स्पेन्सर सम्मति देते हैं। इसके माननेमें किसी-को भी उज्र नहीं हो सकता। पर इससे शिक्षाके ऊपर क्या प्रभाव पड़ेंगे। स्पेन्सर कहते हैं कि विज्ञानकी शिक्षा दो। विज्ञानकी शिक्षा बड़े महत्वकी है। ऐसी शिक्षा दो कारणों-से बहुत ज़रूरी है। एक तो इस शिक्षासे लोग वैज्ञानिक काम अच्छी तरह करनेकेलिये धीरे धीरे तैयार हो जाते हैं। दूसरे, तजुरबेसे प्राप्त हुए वैज्ञानिक ज्ञानकी अपेक्षा शास्त्रीय रीतिसे प्राप्त हुए ज्ञानका महत्व अधिक है। क्या प्रत्येक मनुष्यको सब विज्ञानोंकी शिक्षा देनी चाहिए। इस प्रश्नकी असम्भव-नीयता बहुत ही स्पष्ट है। तब क्या प्रत्येक बालककेलिये यह बात पहिलेसे ही निश्चित कर ली जाय कि भविष्यत्में उसका उदरनिर्वाहक व्यवसाय क्या होगा और तदनुसार उसको उन्हीं विज्ञानोंकी शिक्षा देनी चाहिए जो उस व्यव-साय या कार्यकेलिये लाभकारी हों। दूसरे शब्दोंमें यह कहना चाहिए कि प्रत्येक व्यवसायकेलिये एक पृथक् मदरसा होना चाहिए। व्यावहारिक जीवनमें ऐसा होना कमसे कम भारत वर्षकेलिये असम्भव ही है।

कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि उदर निर्वाहक शिक्षाके-लिये जिस विज्ञानका महत्व स्पेन्सरने दर्शाया है, उसमें व्यावहारिक कार्य-कुशलतामें कुछ भी अन्तर नहीं पडता।

कोई भी मनुष्य प्रकाशका तरङ्ग सिद्धान्त और आँखोंकी बनावटको जानकर दूसरे मनुष्योंसे अधिक नहीं देख सकता। कोई भी गणितशास्त्री तैरने या डांड चलानेमें उस मनुष्यसे अपने गणित शास्त्रके ज्ञानकी बदौलत अधिक फायदा नहीं उठा सकता जो जलके भारके नियमोंसे नितान्त अनभिज्ञ है। जहाँतक अर्थोपार्जनसे अभिप्राय है, वहांतक विज्ञान सार्वत्रिक उपयोगी नहीं पाया जा सकता। ऐसा होते हुए भी स्पेन्सरका मत है कि विज्ञानकी सहायतासे व्यवहारकी भी बड़ी बड़ी गलतियां रोकी जा सकती हैं। इसका उत्तर यह होगा कि यदि व्यवहारी लोग इन गलतियों पर ध्यान दें और उनके प्रतीकारकी फिकर करें तो विज्ञानकी शिक्षा हासिल करनेके बनिस्बत उन्हें अधिक लाभ होगा। तथापि यह तो मानना ही होगा कि वैज्ञानिकोंके अन्वेषणोंसे व्यवसायोंमें बड़ा लाभ हुआ है. और बड़े बड़े वैज्ञानिकोंकी यदि राय ली आया करे तो व्यवहारिक लोग भी बहुत फायदा उठा सकते हैं।

उपर्युक्त बातोंका सारांश यह है कि स्पेन्सरकी शिक्षण पद्धति बिल्कुल निर्भ्रान्त और निर्दोष नहीं है। हम समझते हैं कि मानसिक शक्तियोंके विकासकी जुदी जुदी अवस्थाओं में एक ही प्रकारकी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं होती बल्कि भिन्न भिन्न प्रकारकी। जब किसी प्रकारकी शिक्षाकी आवश्यकता निर्णय हो जावे, तब हमको यह भी विचारना चाहिए कि किस समय वह शिक्षा ठीक तौरपर दी जा सकती है। बुद्धि विषयक शिक्षाका उद्देश न केवल ज्ञानप्राप्ति होना चाहिए, चाहे कितना ही उपयोगी वह क्यों न हो, पर उसका उद्देश सत्यज्ञानका बतलाना, बच्चोंमें जिज्ञासा वृत्ति और और सत्यज्ञानके प्राप्त करनेकी शक्ति उत्पन्न करना ही है।

हम समझते हैं कि निरी वैज्ञानिक शिक्षा जिसको स्पेन्सर अच्छा समझते हैं, इस बातको सम्पादन करनेमें समर्थ नहीं है। ऐसी शिक्षासे अधिकसे अधिक मनका एक तरफा विकास ही हो सकेगा। शायद विद्यार्थियोंकी मानसिक शक्तियोंको विकसित करनेमें ऐसी शिक्षा पर्याप्त न हो जिससे वर्तमान स्थितिमें कुछ भी भेद न हो सकेगा। विशेष विशेष प्रयोजनोंको दृष्टिमें रखकर जिन शास्त्रोंको शिक्षाकेलिये स्पेन्सर अनुरोध करते हैं उनमेंसे अनेकोंसे प्रयोजन नहीं सिद्ध हो सकता और कुछ ऐसे हैं जिनका प्रबन्ध करना बाल्यावस्थामें सम्भव नहीं है। पराक्षरीतिसे आत्मरक्षा करनेकेलिये शरीर-विद्याके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। पर हम लोगोंको शरीर-विद्याके परिणामोंको जानना चाहिए। सन्ततिके पालन-पोषण करनेका ठीक तरीका मनुष्योंको पढ़ना चाहिए, पर बालकोंको इसके जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। काव्य और ललित कलाओंका ज्ञान शिक्षाके फुरसतके समयमें न सम्पादन करना चाहिए पर ये ऐसी अच्छी और गौरवकी विद्याएँ हैं जिनका जानना मदरसोंके प्रत्येक बालकके लिये आवश्यक होना चाहिए।

मानसिक, नैतिक और शारीरिक शिक्षा

स्पेन्सरकी पुस्तकका दूसरा निबन्ध मानसिक शिक्षाके ऊपर है। इसमें स्पेन्सरने शिक्षाके तरीकोंका उल्लेख किया है। पेस्टलोज़ीके समान स्पेन्सर पहिले इस बातके ऊपर ज़ोर देता है कि शिक्षा विकासके स्वाभाविक तरीकेके अनुकूल होना चाहिए। वह उस समयकी शिक्षा-प्रणालीके दोषोंका खण्डन

करता है। वह न्यायशास्त्रके अनुसार अपने नियमोंका यथाक्रम उल्लेख करता है—

(१) शिक्षामें सरल बातें पहिले सिखलाकर तब कठिन बातें सिखलानी चाहिए।

(२) बच्चोंको पहिले मोटी मोटी अनिश्चित बातें सिखला कर तब निश्चित और बारीक बातें सिखलानी चाहिए।

(३) जिस क्रम और रीतिसे मनुष्यजातिने शिक्षा पायी है, उसी क्रम और रीतिसे बच्चोंको शिक्षा मिलनी चाहिए।

(४) प्रत्येक विषयकी शिक्षामें मोटी व्यावहारिक बातें पहिले सिखलाई जायँ और तब शास्त्रीय बातें।

(५) जहाँतक सम्भव हो सके बच्चोंको अपनी बुद्धि-की उन्नति आप ही करनेकेलिये उत्साहित करना चाहिए।

(६) अच्छी शिक्षा-पद्धतिकी कसौटी यह है कि उससे बच्चोंको आनन्द और मनोरञ्जन मिले।

इन सिद्धान्तोंको स्पेन्सरने भिन्न प्रकारके विषयोंके पठन-पाठनके ऊपर घटाया है और उनके महत्वको भली भाति दर्शाया है। ये सिद्धान्त पेस्टलोजी, हर्बार्ट और फ्रोयलके प्रवर्तित किये हुए सिद्धान्तोंके समान हैं।

नैतिक और शारीरिक शिक्षाके निबन्धोंमें स्पेन्सरकी बातोंमें कोई मौलिकता नहीं दिखलाई पडती। कुछ विद्वानों की यह सम्मति है कि नीति और धर्मको पृथक् कर देनेसे नैतिक शिक्षाकी उपयोगिता आधीसे भी कम हो जाती है। पर स्पेन्सरको नीति और धर्मको मिलाना अभीष्ट नहीं। स्वेच्छाचारिता, लोकाचार और कठोरता द्वारा जो अनुचित दबाव लोगोंपर डाले जाते हैं उनका स्पेन्सर विरोधी है।

ऐसा होना नैतिक शिक्षाकेलिये अच्छा नहीं। नैतिक शिक्षाने आत्मनिग्रह और स्वाभाविक बुरी आदतोंको निकाल देनेके ऊपर ज़ोर देना चाहिए। रूसोका मत था कि बच्चा स्वभावसे अच्छा होता है। इसके विपरीत स्पेन्सरकी यह धारणा है कि जिस प्रकार बहुत छोटी उम्रमें लड़कोंके अवयव असभ्य मनुष्योंके अवयवोंके सदृश होते हैं, उसी तरह उनके स्वभाव भी असभ्योंके स्वभावके सदृश होते हैं। यद्यपि स्पेन्सर ईसाइयोंके इस सिद्धान्तको नहीं मानता था कि मनुष्य स्वभावसे पापी होता है, तो भी लड़कोंके स्वभावके विषयमें वह इसी सिद्धान्तका पोषक मालूम होता है। लड़कोंकी स्वाभाविक दण्ड देनेका स्पेन्सर पक्षपाती है जैसा रूसो भी मानता है। याद रखना चाहिए कि स्वाभाविक दण्डका दायरा बहुत ही छोटा है। शारीरिक शिक्षाके सम्बन्धमें वह यह कहता है कि जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकेलिये सबसे आवश्यक बात आरोग्य शरीर ही है। स्वास्थ्य-रक्षाको धर्म समझना चाहिए, स्पेन्सर ऐसा उपदेश देते हैं। लड़कों और लड़कियोंको किस प्रकारका, और कितना भोजन (दिया जाय) और उनके वस्त्र, व्यायाम और खेल कूद आदि पर विशेष ध्यान देना चाहिए। स्पेन्सर तापसवृत्तिके विरुद्ध हैं। अधिक दिमाग़ी मेहनतसे भयङ्कर परिणाम उत्पन्न होते हैं और इससे जीवनके सुखोंका नाश होता है। स्वाभाविक खेल कूदके सामने वह "जिमनास्टिक" आदि किसी प्रकारके व्यायामको अच्छा नहीं समझता क्योंकि ये व्यायाम कृत्रिम होते हैं।

करता है। यह न्यायशास्त्रके अनुसार अपने नियमोंका यथाक्रम उल्लेख करता है—

(१) शिक्षामें सरल बातें पहिले सिखलाकर तब कठिन बातें सिखलानी चाहिएं।

(२) बच्चोंको पहिले मोटी मोटी अनिश्चित बातें सिखला कर तब निश्चित और बारीक़ बातें सिखलानी चाहिएं।

(३) जिस क्रम और रीतिसे मनुष्यजातिने शिक्षा पायी है, उसी क्रम और रीतिसे बच्चोंको शिक्षा मिलनी चाहिए।

(४) प्रत्येक विषयकी शिक्षामें मोटी व्यावहारिक बातें पहिले सिखलाई जायँ और तब शास्त्रीय बातें।

(५) जहाँतक सम्भव हो सके बच्चोंको अपनी बुद्धिकी उन्नति आप ही करनेकेलिये उत्साहित करना चाहिए।

(६) अच्छी शिक्षा-पद्धतिकी कसौटी यह है कि उससे बच्चोंको आनन्द और मनोरञ्जन मिले।

इन सिद्धान्तोंको स्पेन्सरने भिन्न प्रकारके विषयोंके पठन-पाठनके ऊपर घटाया है और उनके महत्वको भली भांति दर्शाया है। ये सिद्धान्त पेस्टलोज़ी, हर्बार्ट और फ्रौबलके प्रवर्तित किये हुए सिद्धान्तोंके समान हैं।

नैतिक और शारीरिक शिक्षाके निबन्धोंमें स्पेन्सरकी बातोंमें कोई मौलिकता नहीं दिखलाई पडती। कुछ विद्वानों की यह सम्मति है कि नीति और धर्मको पृथक् कर देनेसे नैतिक शिक्षाकी उपयोगिता आधीसे भी कम हो जाती है। पर स्पेन्सरको नीति और धर्मको मिलाना अभीष्ट नहीं। स्वेच्छाचारिता, लोकाचार और कठोरता द्वारा जो अनुचित दबाव लोगोंपर डाले जाते हैं उनका स्पेन्सर विरोधी है।

ऐसा होना नैतिक शिक्षाकेलिये अच्छा नहीं। नैतिक शिक्षामें आत्मनिग्रह और स्वाभाविक बुरी आदतोंको निकाल देनेके ऊपर ज़ोर देना चाहिए। रूसोका मत था कि बच्चा स्वभावसे अच्छा होता है। इसके विपरीत स्पेन्सरकी यह धारणा है कि जिस प्रकार बहुत छोटी उम्रमें लड़कोंके अवयव असभ्य मनुष्योंके अवयवोंके सदृश होते हैं, उसी तरह उनके स्वभाव भी असभ्योंके स्वभावके सदृश होते हैं। यद्यपि स्पेन्सर ईसाइयोंके इस सिद्धान्तको नहीं मानता था कि मनुष्य स्वभावसे पापी होता है, तो भी लड़कोंके स्वभावके विषयमें वह इसी सिद्धान्तका पोषक मालूम होता है। लड़कोंको स्वाभाविक दण्ड देनेका स्पेन्सर पक्षपाती है जैसा रूसो भी मानता है। याद रखना चाहिए कि स्वाभाविक दण्डका दायरा बहुत ही छोटा है। शारीरिक शिक्षाके संम्बन्धमें वह यह कहता है कि जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके लिये सबसे आवश्यक बात आरोग्य शरीर ही है। स्वास्थ्य-रक्षाको धर्म समझना चाहिए, स्पेन्सर ऐसा उपदेश देते हैं। लड़कों और लड़कियोंको किस प्रकारका, और कितना भोजन (दिया जाय) और उनके वस्त्र, व्यायाम और खेल कूद आदि पर विशेष ध्यान देना चाहिए। स्पेन्सर तापसवृत्तिके विरुद्ध है। अधिक दिमागी मेहनतसे भयङ्कर परिणाम उत्पन्न होते हैं और इससे जीवनके सुखोंका नाश होता है। स्वाभाविक खेल कूदके सामने वह "जिमनास्टिक" आदि किसी प्रकारके व्यायामको अच्छा नहीं समझता क्योंकि ये व्यायाम कृत्रिम होते हैं।

स्पेन्सरका प्रभाव

ऊपर लिखी हुई बातोंको पढ़नेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि शिक्षाके उद्देशकी परिभाषा और ज्ञानोंकी अन्यसापेक्ष उपयोगिताकी कसौटीको छोड़ कर स्पेन्सरकी शिक्षा नामक पुस्तक में बहुत ही कम मौलिक बातें पायी जाती हैं। पर रूसो, पेस्टलोजी और दूसरे शिक्षण-सुधारकोंके सिद्धान्तोंको मिलाने का तरीका नवीन था और इन सुधारकोंके सिद्धान्तोंमें इससे पुष्टता और व्यावहारिकता आगयी है। सचमुच ससारके दार्शनिकोंमें स्पेन्सरका स्थान बहुत ही ऊंचा है। वह इस शताब्दीका सबसे बडा शिक्षण-सुधारक माना जाता है। स्पेन्सरकी शिक्षा पुस्तकसे अंग्रेजी भाषाको बहुत ही अधिक गौरव मिला है। स्पेन्सरको ही बदौलत और उसके परिश्रम से विज्ञानको पाठ्य-विषयोंमें उचित स्थान मिल गया है।

ज्ञानमण्डलके उद्देश्य और नियम।

उद्देश्य (१) देशी भाषाओंद्वारा संसारके ज्ञानको अपनाना।

(२) विदेशी भाषाओंद्वारा भारतके ज्ञानको संसारमें पहुँचाना।

(३) संस्कृतमें वर्त्तमान ज्ञानभण्डारकी खोज कर उसका देशी और विदेशी भाषाओंद्वारा प्रचार करना।

नियम (१) प्रायः मौलिक ग्रन्थ ही प्रकाशित किये जायँगे। कुछ चुने हुए ग्रन्थोंका भाषान्तर भी प्रकाशित होगा।

स्थायी ग्राहकोंके नियम

ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहकोंके निम्नलिखित नियम हैं।

(१)—जो महाशय १) रु० प्रवेश शुल्क जमाकर अपना नाम ग्राहकोंकी श्रेणीमें लिखा लेंगे वे ही स्थायी ग्राहक समझे जायंगे। स्थायी ग्राहक दो प्रकारके होंगे।

(अ) एक वे जो ग्रन्थमालामें प्रकाशित सभी पुस्तकें लेना चाहते हैं। ऐसे ग्राहकोंको 'माला'में प्रकाशित सभी पुस्तकें पौनी मूल्यपर दी जायँगी।

(ब) दूसरे वे जो 'माला'से प्रकाशित केवल वे पुस्तकें लेना चाहते हैं जिनसे उन्हें विशेष रुचि है, पर उन्हें वर्ष भरमें प्रकाशित पुस्तकोंमें से कमसे कम आधी पुस्तकें लेना आवश्यक होगा। ऐसे ग्राहकोंको १५) रु० प्रति सैकड़े कमीशन दिया जायगा।

(२)—सभी पुस्तकोंकी सूचना स्थायी ग्राहकोंको प्रकाशित होनेसे १५ दिन पूर्व दे दी जायँगी। जिन महाशयको पुस्तक मँगाना स्वीकार न हो उन्हें इस बातकी तुरन्त सूचना दे देनी चाहिए। अन्यथा पुस्तक छपकर भेजनेपर यदि वह लौटा दी जायँगी तो उसके व्ययका भार उनपर रहेगा जो दूसरी मर्तबा वी० पी० भेजनेपर वसूल कर लिया जायगा।

(३)—जो स्थायी ग्राहक लगातार वी० पी० को दो बार बिना यथेष्ट कारण लौटा देंगे, उनका नाम स्थायी ग्राहकोंकी सूचीसे अलग कर दिया जायगा।

(४)—स्थायी ग्राहकोंको पूर्व प्रकाशित सभी पुस्तकोंमें रियायत की जायगी। पर उनके लिए उन्हें अलग पत्र व्यवहार करना होगा।

(५)—हमारे यहाँसे प्रकाशित 'स्वार्थ' मासिक पत्रके ग्राहकोंको भी कार्यालय की प्रकाशित सभी पुस्तकें पौनी मूल्यपर दी जायँगी।